Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

मध्यकालीन मेवाड़ (9वीं–16वीं शताब्दी) में मुद्रा का जीवनचक्र: उत्पादन, प्रचलन एवं संचयन का मुद्राशास्त्रीय विश्लेषण

हिमांशु मीणा

पीएच.डी. शोधार्थी, इतिहास विभाग, भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान।

सारांश

मध्यकालीन मेवाड़ (9वीं–16वीं शताब्दी) के आर्थिक इतिहास की पुनर्रचना में मुद्राशास्त्रीय साक्ष्यों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण, परंतु अधिकांशतः विवरणात्मक रही है। प्रचलित अध्ययन परंपराओं ने मुद्रा को एक स्थिर ऐतिहासिक वस्तु के रूप में देखा और केवल उसके शिल्प, प्रतीक तथा धातुगत विवरणों पर विमर्श किया। यह शोधपत्र इस विवरणात्मक परंपरा से विमुक्त होकर मुद्रा को एक गतिशील, सतत एवं परिवर्तनशील आर्थिक-सामाजिक इकाई के रूप में स्थापित करता है। शोध की मूल समस्या यह है कि मेवाड़ की मुद्राओं के 'उत्पादन', 'प्रचलन' एवं 'संचयन' के अंतर्संबंधों को एक सतत जीवनचक्र के रूप में किसी ने व्यवस्थित रूप से विश्लेषण नहीं किया। वर्तमान शोध का प्रमुख उद्देश्य गुहिल एवं सिसोदिया शासककाल में मुद्रा के जन्म (टकसालीय उत्पादन), उसके सक्रिय जीवन (बाजार, व्यापार एवं कर-प्रणाली में प्रचलन) तथा उसके निष्क्रिय अवस्था (मंदिर, मुद्रा-निधि एवं संकटकालीन संचयन) की परस्पर निर्भरता को स्थापित करना है। अभिलेखागत, मुद्राशास्त्रीय एवं पुरातात्त्विक प्राथमिक स्रोतों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर यह शोध सिद्ध करता है कि मेवाड़ की मुद्रा केवल राजनीतिक सत्ता का प्रतीक नहीं, अपितु एक जीवंत आर्थिक प्रवाह का वाहक थी, जिसका जीवनचक्र राजनीतिक परिवर्तनों, सैनिक संकटों एवं व्यापारिक गतिविधियों से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता था। शोध का नवीन योगदान 'मुद्रा-जीवनचक्र प्रवाह मॉडल' का प्रतिपादन है, जो भारतीय उप-महाद्वीप के क्षेत्रीय मुद्राशास्त्र में एक नवीन विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण स्थापित करता है।

मुख्य शब्द: मुद्राशास्त्र, मेवाड़, टकसाल, मुद्रा-प्रचलन, मुद्रा-निधि, आर्थिक इतिहास, मध्यकालीन राजस्थान, मुद्रा-जीवनचक्र।

1. प्रस्तावना

1.1 विषय का परिचय

मध्यकालीन भारत के इतिहास-लेखन में राजस्थान के क्षेत्रीय राज्यों, विशेषकर मेवाड़ की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक धरोहर का विस्तृत विमर्श उपलब्ध है, परंतु इसके आर्थिक इतिहास, विशेषतः मुद्राशास्त्रीय अध्ययन, अधिकांशतः उपेक्षित रहे हैं। गुहिल एवं सिसोदिया वंशों के शासनकाल (9वीं–16वीं शताब्दी) में मेवाड़ न केवल एक सशक्त राजनीतिक इकाई के रूप में उभरा, अपितु अरावली पर्वतमाला की खनिज संपदा, चावड़, नागदा, कुम्भलगढ़ एवं चित्तौड़ जैसे शहरी केन्द्रों की व्यापारिक गतिविधियों तथा अजमेर-मालवा-गुजरात व्यापारिक मार्गों की सक्रियता के कारण एक जीवंत आर्थिक क्षेत्र भी बना। इस आर्थिक जीवंतता का सबसे स्पष्ट एवं ठोस प्रमाण मेवाड़ की मुद्राएँ हैं। परंतु, अतीत के आर्थिक विमर्श में मुद्रा को प्रायः एक 'स्थिर अवशेष' - जो केवल शासक का नाम, उसकी विजय एवं धातुगत विवरण प्रस्तुत करती है - के रूप में देखा गया। यह दृष्टिकोण मुद्रा के अध्ययन को केवल एक विवरणात्मक सूचीकरण के स्तर पर सीमित रखता है। वास्तविकता यह है कि मुद्रा एक गतिशील इकाई है; उसका अस्तित्व केवल उसके निर्माण से प्रारंभ नहीं होता, अपितु वह टकसाल से निर्गत होकर एक

लंबी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक यात्रा करती है। वर्तमान शोधपत्र मेवाड़ की मुद्रा को इसी गतिशीलता के दृष्टिकोण से विश्लेषित करने का प्रयास करता है।

1.2 शोध का महत्व

मुद्राशास्त्र इतिहास-लेखन की एक ऐसी प्राथमिक विधि है, जो अभिलेखागत साक्ष्यों की पूर्ति करती है। मेवाड़ के संदर्भ में, जहाँ राजपूताना के अधिकांश क्षेत्रीय शासकों ने अपनी स्वतंत्र मुद्रा-प्रणाली को जीवित नहीं रखा और वे दिल्ली सल्तनत अथवा मुगल मुद्राओं के प्रचलन पर निर्भर रहे, वहीं मेवाड़ के शासकों (विशेषतः राणा हम्मीर, कुम्भा, सांगा एवं उदयसिंह) ने अपनी स्वतंत्र टकसालीय परंपरा को निरंतर जीवित रखा।[1] यह स्वतंत्र मुद्रा-प्रणाली मेवाड़ की राजनीतिक स्वाधीनता एवं आर्थिक स्वयंपूर्णता का द्योतक है। अतः, मेवाड़ की मुद्राओं का अध्ययन केवल सिक्कों के आकार-प्रकार का विवरण नहीं, अपितु एक स्वतंत्र राज्य की आर्थिक नीतियों, सैनिक व्यवस्था, व्यापारिक सक्रियता एवं सामाजिक संरचना को समझने का एक अनिवार्य माध्यम है। इस शोध का महत्व इसी में निहित है कि यह मेवाड़ के मुद्राशास्त्रीय साक्ष्यों को राजनीतिक एवं आर्थिक इतिहास के अंतर्संबंधों से जोड़कर एक नवीन विश्लेषणात्मक विमर्श प्रस्तुत करता है।

1.3 मुद्रा जीवनचक्र की अवधारणा

यह शोधपत्र अपनी विश्लेषणात्मक रूपरेखा के लिए "मुद्रा का जीवनचक्र" की अवधारणा का प्रतिपादन एवं प्रयोग करता है, जो इसे सामान्य मुद्राशास्त्रीय अध्ययनों से मौलिक रूप से भिन्न करता है।[2] प्रचलित शोध परंपराओं ने मुद्रा के किसी एक पक्ष - उत्पादन, प्रचलन अथवा संचयन का अध्ययन किया, परंतु इन तीनों पक्षों को एक सतत, परस्पर निर्भर एवं चक्रीय प्रवाह के रूप में देखने का प्रयास नहीं किया। वास्तव में, एक मुद्रा तीन प्रमुख अवस्थाओं से गुजरती है:

(i) उत्पादन: मुद्रा का 'जन्म' टकसाल में होता है। यह अवस्था खनिज संपदा की उपलब्धता, धातुगत मानकीकरण, निर्माण तकनीक एवं शासक की नीतिगत निर्णयों (राजकीय प्रतीक, लेख एवं कलात्मक शिल्प) से नियंत्रित होती है। मेवाड़ में चावड़ एवं चित्तौड़ की टकसालें इस जन्म-प्रक्रिया के केन्द्र थीं।

(ii) प्रचलन: टकसाल से निर्गत होने के बाद मुद्रा अपने 'सक्रिय जीवन' में प्रवेश करती है। यह वह अवस्था है, जहाँ मुद्रा व्यापारिक मार्गों, शहरी बाजारों, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कर-संग्रह प्रणाली एवं सैनिक वेतनों के माध्यम से एक सतत आर्थिक प्रवाह का वाहक बनती है। मेवाड़ की मुद्राओं का गुजरात, मालवा एवं दिल्ली सल्तनत की मुद्राओं के सह-अस्तित्व का विश्लेषण इसी अवस्था में किया जाएगा।

(iii) संचयन: अपने सक्रिय जीवन के बाद अथवा किसी अप्रत्याशित राजनीतिक/सैनिक संकट (जैसे - दिल्ली सल्तनत अथवा मुगलों के आक्रमण) के दौरान मुद्रा अपनी 'निष्क्रिय अवस्था' में प्रवेश करती है। यह संचयन मंदिरों, मठों, व्यापारिक गृहों अथवा मुद्रा-निधियों के रूप में होता है। मुद्रा-निधियाँ मुद्रा के जीवनचक्र का वह अंतिम स्थल हैं, जहाँ वे पुरातात्त्विक साक्ष्यों के रूप में आधुनिक शोधकर्ताओं की पहचान बनती हैं।

---

[1] मेवाड़ के शासकों, विशेषतः राणा कुम्भा एवं सांगा, ने दिल्ली सल्तनत के सिक्कों (जैसे बलबनी एवं फिरोजशाही टंका) के प्रचलन को स्वीकार करने के बावजूद अपनी स्वतंत्र मुद्रा (चावड़ी/चित्तौड़ी टंका) को जीवित रखा। यह राजपूताना के अन्य राज्यों (जैसे जोधपुर अथवा बीकानेर) की मुद्रा-नीति से भिन्न थी, जहाँ सल्तनत की मुद्राओं का अधिक प्रचलन रहा।

[2] एक आधुनिक मुद्राशास्त्रीय अवधारणा है, जो मुद्रा को एक स्थिर पुरावशेष के रूप में देखने के बजाय उसके उत्पादन, प्रचलन एवं संचयन/निधि-रूप की गतिशील प्रक्रिया के रूप में विश्लेषित करती है। इस अवधारणा का प्रयोग पश्चिमी मुद्राशास्त्र में क्रिस्चियन एवं अन्य विद्वानों द्वारा किया गया है, परंतु भारतीय क्षेत्रीय मुद्राशास्त्र, विशेषतः राजस्थान में, इसका व्यवस्थित प्रयोग अभी तक नहीं हुआ है।

इन तीनों अवस्थाओं का अंतर्संबंध एक चक्रीय प्रवाह है, जहाँ संचयन से मुद्रा पुनः प्रचलन में आ सकती है अथवा पुनः टकसाल में गई नई मुद्रा के रूप में पुनर्जन्म ले सकती है। इस प्रकार, "उत्पादन → प्रचलन → संचयन → पुरातात्त्विक साक्ष्य" का यह प्रवाह मॉडल ही वर्तमान शोधपत्र का केंद्रीय विश्लेषणात्मक ढाँचा है।

1.4 अध्ययन की समय सीमा

वर्तमान शोध की समय सीमा 9वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक निर्धारित की गई है। 9वीं शताब्दी में मेवाड़ के गुहिल शासकों (जैसे - भर्तृपट्ट, अल्लट एवं नरपत) के शासनकाल में मुद्रा-प्रणाली के प्रारंभिक संस्थागत विकास के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राणा सांगा एवं उदयसिंह के शासनकाल तक मेवाड़ की मुद्रा-प्रणाली अपनी पूर्ण विकसित, स्वतंत्र एवं प्रतिष्ठित स्थिति में पहुँच गई थी। यह समयावधि मेवाड़ के राजनीतिक उत्कर्ष, दिल्ली सल्तनत एवं मुगलों के साथ संघर्ष, तथा व्यापारिक परिवर्तनों का दौर था, जिसने मुद्रा के जीवनचक्र को निरंतर प्रभावित किया। अतः इस समय सीमा का चयन मुद्रा के जन्म, विकास, परिवर्तन एवं अवसान की संपूर्ण चक्रीय प्रक्रिया को ग्रहण करने के लिए अत्यंत उपयुक्त है।

1.5 अध्ययन क्षेत्र

शोध का अध्ययन क्षेत्र मेवाड़ का राज्य है, जो भौगोलिक दृष्टि से अरावली पर्वतमाला के पूर्वी एवं पश्चिमी ढलानों पर स्थित है। अरावली की खनिज संपदा (विशेषतः ताँबा एवं लोहा) मुद्रा-उत्पादन के लिए आधारभूत थी, जबकि चित्तौड़, कुम्भलगढ़, नागदा एवं चावड़ जैसे दुर्ग-नगर मुद्रा के प्रचलन एवं संचयन के प्रमुख स्थल थे। मेवाड़ की भौगोलिक सीमाएँ - जो गुजरात, मालवा, मारवाड़ एवं बुंदेलखंड से जुड़ी थीं - ने उसकी मुद्रा के प्रचलन-क्षेत्र को निर्धारित किया। अतः मेवाड़ का भौगोलिक एवं राजनीतिक स्वरूप मुद्रा के जीवनचक्र को समझने के लिए एक अनिवार्य प्रसंग है।

2. साहित्य समीक्षा

मध्यकालीन मेवाड़ के मुद्राशास्त्रीय एवं आर्थिक इतिहास से संबंधित विद्वानों के शोध-कार्यों का विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक अवलोकन आवश्यक है, ताकि वर्तमान शोध की मौलिकता एवं शोध-अंतर को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जा सके। इस साहित्य समीक्षा को अध्ययन की सुविधानुसार तीन प्रमुख खंडों में विभाजित किया गया है:

(क) भारतीय मुद्राशास्त्र : सैद्धांतिक एवं विधिगत पृष्ठभूमि

भारतीय मुद्राशास्त्र के क्षेत्र में प्रारंभिक एवं मार्गदर्शक शोध अधिकांशतः विवरणात्मक सूचीकरण तक सीमित रहे। अलेक्जेंडर कनिंघम ने अपनी रिपोर्टों में भारतीय सिक्कों को वंशक्रमानुसार वर्गीकृत करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया, परंतु उनका ध्यान मुद्रा के आर्थिक जीवनचक्र के बजाय केवल उसकी पहचान एवं शिल्प पर था। जॉन एलन ने गुप्त एवं कुषाण मुद्राओं के विस्तृत कैटलॉग तैयार किए, जिन्होंने भारतीय मुद्राओं के मानकीकरण को समझने का आधार तो दिया, परंतु मुद्रा को एक स्थिर वस्तु के रूप में ही देखा। इसी परंपरा में डॉ. पी. एल. गुप्ता का योगदान उल्लेखनीय है; उन्होंने मुद्रा निर्माण की तकनीकों एवं धातुशास्त्र को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्पष्ट किया। यद्यपि गुप्ता जी ने मुद्रा के 'उत्पादन' के तकनीकी पक्ष का विशद विश्लेषण किया, परंतु उत्पादन के बाद मुद्रा के 'प्रचलन' एवं उसके 'संचयन' के बीच के अंतर्संबंधों को व्यवस्थित रूप से नहीं जोड़ा। बी. एन. मुखर्जी ने मुद्राओं को आर्थिक इतिहास के संदर्भ में देखते हुए मुद्रा-प्रचलन एवं व्यापारिक गतिविधियों के द्वैत-संबंध को स्थापित किया। दिनेशचंद्र सरकार ने भारतीय अभिलेखों में उपलब्ध मुद्रागत शब्दावली (जैसे—द्रम्म, टंक, गद्याणक) का विस्तृत विश्लेषण किया, जो मुद्रा के प्रचलन को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। परंतु इन शोधों में एक सामान्य कमी यह रही कि मुद्रा को एक गतिशील जीवनचक्र के रूप में देखने के बजाय उसे एक विलग एवं स्थिर ऐतिहासिक घटना के रूप में विश्लेषित किया गया।

(ख) राजस्थान एवं मेवाड़ का आर्थिक-मुद्राशास्त्रीय विमर्श

राजस्थान के इतिहास-लेखन में गौरीशंकर हीराचंद ओझा का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने 'राजपूताने का इतिहास' में मेवाड़ के शासकों द्वारा जारी मुद्राओं (विशेषतः चित्तौड़ी एवं कुम्भलगढ़ी टंक) का उल्लेख किया है, परंतु उनका दृष्टिकोण पूर्णतः राजनीतिक एवं वंशावलीगत था। उन्होंने मुद्राओं का विवरण केवल शासक की विजय एवं सत्ता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया, न कि एक आर्थिक जीवनचक्र के अंग के रूप में। दशरथ शर्मा ने 'राजपूत राजनीति' एवं अपने अन्य शोध-पत्रों में राजपूताना की आर्थिक व्यवस्था, कर-संरचना एवं व्यापारिक मार्गों का विश्लेषण किया है। उन्होंने मुद्रा के प्रचलन के सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं को छुआ, परंतु मुद्रा-निर्माण की तकनीकी एवं संस्थागत प्रक्रिया (उत्पादन) तथा मुद्रा-निधियों (संचयन) के विश्लेषण से वे अलग रहे। आर. सी. अग्रवाल ने राजस्थान की पुरातात्त्विक एवं संग्रहालय-आधारित मुद्राओं का अत्यंत प्रामाणिक अध्ययन किया। उनके शोध में राजपूताना से प्राप्त मुद्रा-निधियों का विवरण उपलब्ध है, जो संचयन के अध्ययन के लिए आधारभूत है, परंतु उन्होंने इन निधियों को उत्पादन एवं प्रचलन के संदर्भ से जोड़कर एक चक्रीय प्रवाह के रूप में नहीं देखा। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्टों एवं 'एपिग्राफिया इंडिका' में मेवाड़ के ताम्रपत्रों एवं अभिलेखों में उल्लिखित मुद्रागत शब्दावली (जैसे - 'विग्रहपाल द्रम्म', 'रूपक') के संदर्भ मिलते हैं, परंतु ये साक्ष्य भी खंडित एवं विवरणात्मक हैं।

(ग) शोध अंतर

उपर्युक्त साहित्य के विस्तृत अवलोकन से एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं मौलिक शोध-अंतर स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है। अब तक के अधिकांश शोध निम्नलिखित सीमाओं से बंधे रहे हैं:

- अधिकांश विद्वानों ने सिक्कों का केवल विवरणात्मक एवं शास्त्रीय परिचय दिया है।
- कुछ शोधों ने केवल प्रतीकों, लेखों एवं लिपि का अध्ययन करके उन्हें राजनीतिक दस्तावेजों के रूप में स्थापित किया।
- आर्थिक इतिहास के विमर्श में मुद्रा का उपयोग केवल मूल्य के रूप में किया गया, न कि एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में।

सबसे बड़ी कमी यह है कि अब तक किसी भी शोधकर्ता ने **उत्पादन + प्रचलन + संचयन** इन तीनों को एक सतत जीवनचक्र के रूप में व्यवस्थित ढंग से नहीं देखा। मुद्रा का निर्माण टकसाल में होता है, वह बाजार, व्यापार एवं कर-प्रणाली के माध्यम से प्रचलित होती है, और अंततः संकटकाल, धार्मिक दान अथवा सामाजिक सुरक्षा के रूप में संचित (निधियों के रूप में) होती है। इन तीनों अवस्थाओं का अंतर्संबंध, परस्पर निर्भरता एवं चक्रीय प्रवाह को एक सैद्धांतिक ढाँचे में बाँधने का प्रयास नहीं किया गया। वर्तमान शोधपत्र ठीक इसी शोध अंतर को भरता है। यहाँ मुद्रा को एक निष्क्रिय पुरावशेष नहीं, अपितु एक ऐसी जीवंत आर्थिक इकाई के रूप में अध्ययन किया जाएगा, जिसका जन्म (उत्पादन), यौवन (प्रचलन) एवं वानप्रस्थ (संचयन) मेवाड़ की राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से गहनतम स्तर पर जुड़ा है।

3. शोध प्रश्न

वर्तमान शोध का केंद्र बिंदु मुद्रा के जीवनचक्र की अवधारणा है, जिसे सुस्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित प्रमुख शोध प्रश्नों का निर्माण किया गया है:

- मध्यकालीन मेवाड़ ($9^{वीं}$–$16^{वीं}$ शताब्दी) में टकसालीय व्यवस्था का संस्थागत ढाँचा क्या था और धातुओं के चयन, मानकीकरण एवं निर्माण तकनीकों के आधार पर मुद्रा का 'उत्पादन' कैसे संपन्न होता था?
- उत्पादन के बाद मेवाड़ की मुद्रा किन व्यापारिक मार्गों, शहरी एवं ग्रामीण बाजारों एवं कर-प्रणालियों के माध्यम से 'प्रचलन' में आती थी और यह राज्य की आर्थिक गतिविधियों को किस प्रकार गतिशील करती थी?
- मेवाड़ में मुद्रा का 'संचयन' किन विशिष्ट आर्थिक, सामाजिक एवं सैनिक परिस्थितियों (विशेषकर युद्धकालीन संकट) में होता था?

- पुरातात्त्विक रूप से उपलब्ध मुद्रा-निधियाँ मेवाड़ के आर्थिक संकट, धातुगत कमी एवं राजनीतिक अस्थिरता को किस प्रकार दस्तावेजीकरण करती हैं?
- क्या मेवाड़ के सिक्कों के जीवनचक्र में आने वाले उतार-चढ़ाव (उत्पादन में कमी, प्रचलन में अवरोध, अथवा अत्यधिक संचयन) दिल्ली सल्तनत एवं मुगलों के साथ हुए राजनीतिक संघर्षों का प्रत्यक्ष आर्थिक परिणाम थे?

4. शोध उद्देश्य

उपर्युक्त शोध प्रश्नों एवं शोध अंतर के आलोक में, वर्तमान शोधपत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- मेवाड़ की टकसालीय व्यवस्था, धातु-आपूर्ति, निर्माण तकनीक एवं मानकीकरण का विश्लेषण कर मुद्रा-उत्पादन के संस्थागत ढाँचे को पुनर्रचित करना।
- मेवाड़ की मुद्राओं के प्रचलन के क्षेत्र, व्यापारिक मार्गों, शहरी-ग्रामीण आर्थिक अंतर्संबंधों एवं विदेशी (सल्तनती) मुद्राओं के सह-अस्तित्व की प्रक्रिया की पहचान करना।
- मंदिरों, मठों, व्यापारिक गृहों एवं मुद्रा-निधियों के रूप में मुद्रा-संचयन के कारणों एवं इसकी सामाजिक-आर्थिक भूमिका को स्थापित करना।
- मुद्रा के 'उत्पादन → प्रचलन → संचयन' के अंतर्संबंधों को एक सतत प्रवाह के रूप में जोड़कर 'मुद्रा-जीवनचक्र प्रवाह मॉडल' का प्रतिपादन करना।
- मुद्रा-निधियों के आधार पर संकटकालीन अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक अस्थिरता के बीच के कारण-परिणाम संबंध का विश्लेषण करना।
- मेवाड़ की मुद्राओं का टाइपोलॉजिकल (प्रतीकात्मक), लेखागत एवं धातुगत विश्लेषण कर उनके राजनीतिक प्रतीकवाद एवं आर्थिक संकेतकों को अर्थ-विन्यासित करना।
- मेवाड़ की मुद्रा-प्रणाली को राजपूताना के अन्य समकालीन राज्यों की अपेक्षा एक स्वतंत्र एवं जीवंत आर्थिक व्यवस्था के रूप में स्थापित करना।

5. स्रोत एवं शोध-पद्धति

(क) प्राथमिक स्रोत

- ***अभिलेख एवं ताम्रपत्र:*** मेवाड़ के गुहिल एवं सिसोदिया शासकों के ताम्रपत्र (जैसे - राणा कुम्भा के कुम्भलगढ़ एवं चित्तौड़ के अभिलेख) एवं पाषाण-अभिलेखों में मुद्रागत शब्दावली का प्रयोग मुद्रा के 'प्रचलन' के सबसे प्रामाणिक साक्ष्य हैं। इन अभिलेखों में वर्णित कर-दरें (जैसे - 'रूपक', 'द्रम्म', 'टंका'[3]) एवं भू-दान के मूल्य मुद्रा के सक्रिय जीवन को स्पष्ट करते हैं।
- ***मुद्राएँ:*** मेवाड़ के विभिन्न शासकों (भर्तृपट्ट, अल्लट, हम्मीर, कुम्भा, सांगा एवं उदयसिंह) द्वारा जारी सिक्के (चाँदी, ताँबा एवं मिश्रधातु) मुद्रा के 'उत्पादन' के प्रत्यक्ष एवं ठोस साक्ष्य हैं। इनकी ढाल-विधि, द्रव्यमान एवं शिल्पकार का अध्ययन टकसालीय मानकों को उजागर करता है।
- ***मुद्रा-निधियाँ:*** राजपूताना के विभिन्न स्थलों (चित्तौड़, नागदा, मानपुर, देवली) से प्राप्त मुद्रा-निधियाँ[4] मुद्रा के जीवनचक्र की अंतिम अवस्था 'संचयन' का सबसे जीवंत पुरातात्त्विक प्रमाण हैं। ये निधियाँ युद्धकालीन संकट एवं आर्थिक अवसान की कथा कहती हैं।

[3] मध्यकालीन भारत में प्रचलित एक प्रमुख मौद्रिक इकाई एवं सिक्का, सामान्यतः लगभग 11 ग्राम द्रव्यमान का चाँदी का सिक्का, जिसे दिल्ली सल्तनत ने जारी किया और बाद में राजपूत राज्यों (मेवाड़) ने उसे स्वतंत्र रूप से अपनाया।
[4] पुरातात्त्विक शब्दावली में एक स्थान पर जमा किए गए एक या अनेक शासकों के सिक्कों का वह समूह, जो सामान्यतः युद्ध, संकट अथवा सुरक्षा के उद्देश्य से भूमिगत किया गया होता था। यह मुद्रा के 'संचयन' का प्रत्यक्ष साक्ष्य है।

- ***पुरातात्त्विक रिपोर्ट्स एवं संग्रहालय संग्रह:*** भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट्स, 'एपिग्राफिया इंडिका' एवं 'इंडियन एपिग्राफी' के अभिलेख, तथा उदयपुर (प्रताप संग्रहालय), अजमेर एवं जयपुर के राज्य संग्रहालयों में संरक्षित मेवाड़ की मुद्राएँ अध्ययन का आधारभूत स्रोत हैं।

(ख) द्वितीयक स्रोत

इनमें जी.एच. ओझा, दशरथ शर्मा, आर.सी. अग्रवाल, पी.एल. गुप्ता, बी.एन. मुखर्जी एवं दिनेशचंद्र सरकार जैसे विद्वानों के शोध-ग्रंथ, मुद्राशास्त्रीय पत्रिकाओं (जैसे - 'न्यूमिस्मैटिक डिजेस्ट', 'जर्नल ऑफ न्यूमिस्मैटिक सोसायटी ऑफ इंडिया') में प्रकाशित शोध-पत्र, एवं राजस्थान के जिला गजेटियर्स शामिल हैं। ये स्रोत विश्लेषण की दृष्टि प्रदान करते हैं, परंतु शोध की मौलिकता 'मुद्रा-जीवनचक्र ' के ढाँचे में है, न कि इन ग्रंथों के विवरण में।

(ग) शोध-पद्धति

वर्तमान शोध निम्नलिखित बहुआयामी पद्धतियों के समन्वय से परिचालित है, ताकि मुद्रा के जीवनचक्र का प्रवाह निर्बाध रूप से स्थापित हो सके:

- ***ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक पद्धति:*** प्राथमिक साक्ष्यों को उनके समकालीन राजनीतिक (दिल्ली सल्तनत के आक्रमण) एवं आर्थिक संदर्भों में रखकर विश्लेषित करना, ताकि मुद्रा के जीवनचक्र में आने वाले उतार-चढ़ावों के कारण स्पष्ट हो सकें।
- ***मुद्राशास्त्रीय पद्धति:*** सिक्कों की टाइपोलॉजी, द्रव्यमान एवं धातुगत विश्लेषण के माध्यम से 'उत्पादन' की तकनीकी एवं मानकीकरण प्रक्रिया को डिकोड करना।
- ***तुलनात्मक पद्धति:*** मेवाड़ की मुद्राओं (चित्तौड़ी टंका) को समकालीन दिल्ली सल्तनत (बलबनी टंका) एवं गुजरात की मुद्राओं के साथ तुलना करना, ताकि प्रचलन में उनके सह-अस्तित्व एवं विनिमय-दर को स्थापित किया जा सके।
- ***स्थानिक विश्लेषण:*** मुद्रा-निधियों की प्राप्ति-स्थलों एवं व्यापारिक मार्गों का मानचित्रण करना, ताकि मुद्रा के 'प्रचलन' के क्षेत्रीय विस्तार को स्पष्ट किया जा सके।
- ***आर्थिक पद्धति:*** कर-प्रणाली, व्यापारिक मार्ग एवं मुद्रा-निधियों के आँकड़ों के आधार पर मेवाड़ की अर्थव्यवस्था में मुद्रा के प्रवाह का एक सैद्धांतिक ' प्रवाह मॉडल ' निर्मित करना।

इन पद्धतियों के समन्वित उपयोग से यह सुनिश्चित किया जाएगा कि मुद्रा को केवल एक पुरावशेष के रूप में नहीं, अपितु एक गतिशील आर्थिक इकाई के रूप में उसके संपूर्ण जीवनचक्र (उत्पादन → प्रचलन → संचयन) के संदर्भ में विश्लेषित किया जा सके।

6. मध्यकालीन मेवाड़ की राजनीतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि

मुद्रा का जीवनचक्र - उसका उत्पादन, बाजारों में प्रचलन एवं संकटकाल में संचयन - किसी भी राज्य की राजनीतिक स्थिति एवं आर्थिक संरचना का प्रत्यक्ष परिणाम होता है। मध्यकालीन मेवाड़ ($9^{वीं}$–$16^{वीं}$ शताब्दी) की मुद्राओं के जीवनचक्र को समझने के लिए इस कालखंड की राजनीतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय अनिवार्य है, क्योंकि यही पृष्ठभूमि मुद्रा के 'जन्म', 'यौवन' एवं 'अवसान' के नियंत्रक थे।

राजनीतिक पृष्ठभूमि: गुहिल से सिसोदिया तक

$9^{वीं}$ शताब्दी में गुहिल वंश (शासक भर्तृपट्ट एवं अल्लट) के अंतर्गत मेवाड़ एक संगठित राजनीतिक इकाई के रूप में उभरा। इस काल में प्रारंभिक राजकीय संस्थाओं का विकास हुआ, जिसका प्रमाण नागदा एवं चावड़ के अभिलेखों में मिलता है। $14^{वीं}$ शताब्दी में राणा हम्मीर (1302-1364) के शासनकाल में मेवाड़ ने दिल्ली सल्तनत (अलाउद्दीन खिलजी) के आक्रमणों के

बावजूद अपनी राजनीतिक स्वाधीनता को पुनः स्थापित किया और सिसोदिया वंश की नींव रखी। 15वीं शताब्दी में राणा कुम्भा (1433-1468) के काल में मेवाड़ राजनीतिक उत्कर्ष के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा; कुम्भलगढ़ एवं चित्तौड़ के दुर्गों का निर्माण, मालवा एवं गुजरात पर विजय, एवं सल्तनत के साथ संघर्ष - ये सभी मुद्रा-उत्पादन के प्रत्यक्ष नियंत्रक थे। 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राणा सांगा (1509-1528) ने मुगल सम्राट बाबर के साथ निर्णायक संघर्ष किया। इन निरंतर राजनीतिक संघर्षों (सल्तनत एवं मुगलों के आक्रमण) का मुद्रा के जीवनचक्र पर द्विगुण प्रभाव पड़ा: एक ओर सैनिक व्यय की अपार मात्रा मुद्रा-उत्पादन को बढ़ावा देती थी, दूसरी ओर आक्रमणकालीन संकट मुद्रा के अत्यधिक 'संचयन' (निधियों के रूप में गुप्त रखने) का कारण बनता था।

आर्थिक पृष्ठभूमि: कृषि, व्यापार एवं शहरीकरण

मेवाड़ की आर्थिक रीढ़ कृषि एवं पशुपालन थी, परंतु इसकी आर्थिक जीवंतता व्यापार एवं शहरीकरण पर निर्भर करती थी, जो मुद्रा के 'प्रचलन' के प्रमुख वाहक थे।

- ***कृषि एवं राजस्व:*** मेवाड़ की सस्पति-व्यवस्था बागानी एवं खरीफ फसलों पर आधारित थी। अभिलेखों में भू-राजस्व की दरें (जैसे - 'रूपक' एवं 'द्रम्म'[5] में) विशिष्ट हैं, जो सिद्ध करती हैं कि कृषि-राजस्व मुद्रा के प्रचलन का सबसे बड़ा स्रोत था। राज्य द्वारा 'विष्टि'[6] (विशेष कर) एवं 'भाग' (फसल का हिस्सा) के रूप में संग्रहीत मुद्रा पुनः राजकीय व्यय (सैनिक वेतन, दुर्ग-निर्माण) के माध्यम से बाजार में लौटती थी, जो जीवनचक्र की चक्रीयता को दर्शाता है।
- ***व्यापार एवं व्यापारिक मार्ग:*** मेवाड़ का भौगोलिक स्थान (अरावली के मध्य) इसे एक प्राकृतिक व्यापारिक संकट बनाता था। गुजरात के समुद्री पोतों (खंभात) से आने वाली वस्तुएँ मालवा एवं चित्तौड़ के माध्यम से उत्तरी भारत (दिल्ली/आगरा) की ओर प्रवाहित होती थीं। चित्तौड़, नागदा एवं मानपुर मेवाड़ के प्रमुख व्यापारिक नगर थे। इन मार्गों पर व्यापारियों द्वारा मेवाड़ की स्वतंत्र मुद्राओं एवं सल्तनती मुद्राओं (बलबनी टंका) का सह-प्रचलन मुद्रा के जीवनचक्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक पहलू है।
- ***खनिज संपदा एवं शहरीकरण:*** अरावली पर्वतमाला मेवाड़ को ताँबा (कुम्भलगढ़/जावर), लोहा एवं सोने-चाँदी की प्राकृतिक संपदा प्रदान करती थी। यह संपदा मुद्रा-उत्पादन के लिए अनिवार्य आधारभूत आपूर्ति थी। जावर के ताम्र-खदानों का उत्पादन सिक्कों की धातुगत मात्रा को नियंत्रित करता था। दूसरी ओर, राणा कुम्भा एवं सांगा के काल में चित्तौड़, कुम्भलगढ़ एवं चावड़ का शहरीकरण अपनी चरम सीमा पर था। शहरी केन्द्रों में वस्तु-विनिमय की जटिलता ने मुद्रा के प्रचलन को अनिवार्य बनाया; बाजार (मण्डपेश्वर), मंदिर एवं व्यापारी-संघ (सेठ/साहु) मुद्रा के विनिमय के प्रमुख स्थल थे।

स्पष्ट है कि मेवाड़ की राजनीतिक स्वाधीनता एवं आर्थिक जीवंतता ने उसकी मुद्रा-प्रणाली को जन्म दिया (उत्पादन), सतत संघर्षों एवं व्यापारिक गतिविधियों ने उसे बाजारों में गतिशील किया (प्रचलन), और सैनिक आक्रमणों के भय ने उसे पुरातात्त्विक गर्त (निधियों) में ढकेल दिया (संचयन)। यही पृष्ठभूमि आगामी विश्लेषणात्मक अध्यायों के लिए आधारभूत है।

7. मुद्रा उत्पादन

मुद्रा के जीवनचक्र का प्रथम एवं सबसे निर्णायक चरण उसका 'उत्पादन' है। मध्यकालीन मेवाड़ में मुद्रा का जन्म केवल धातु को एक निश्चित आकार देने की एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं था, अपितु यह राज्य की स्वाधीनता, शासक की सत्ता एवं आर्थिक

[5] प्रारंभिक मध्यकाल (8वीं-12वीं शताब्दी) में प्रचलित एक छोटी मौद्रिक इकाई, प्रायः ताँबे अथवा मिश्रधातु का सिक्का, जिसका उपयोग स्थानीय एवं दैनिक व्यवहारों में होता था। टंका की तुलना में इसका मूल्य कम था।
[6] प्रारंभिक एवं मध्यकालीन भारतीय अभिलेखों में वर्णित एक प्रकार का अनियमित अथवा बलाधारित कर/श्रम, जो संकटकाल (युद्ध आदि) में राज्य द्वारा नागरिकों से वसूला जाता था।

नीतियों का एक संस्थागत प्रतिपादन था। एक सिक्का टकसाल के अंधकार प्रकोष्ठों से निर्गत होकर बाजार के प्रकाश में आता है, तब उसमें शासक की इच्छा, टकसालीय कर्मचारी की तकनीक एवं राज्य की आर्थिक आवश्यकताएँ अंकित होती हैं। मेवाड़ के संदर्भ में, विशेषतः दिल्ली सल्तनत के प्रत्यक्ष आक्रमणकारी दबाव के बीवजूद, स्वतंत्र टकसालीय उत्पादन को जीवित रखना एक अद्वितीय राजनीतिक-आर्थिक उपलब्धि है।

7.1 टकसाल

टकसाल मुद्रा-जीवनचक्र का 'जन्म-स्थल' है। मध्यकालीन मेवाड़ में टकसाल की स्थापना राजनीतिक सत्ता के केन्द्रों एवं व्यापारिक नगरों के अत्यंत निकट होती थी, ताकि शासक का नियंत्रण एवं धातु की आपूर्ति सुगम रहे। गुहिल शासकों (9वीं-12वीं शताब्दी) के काल में नागदा एवं चावड़ प्रमुख टकसालीय केन्द्र थे। 14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राणा हम्मीर एवं 15वीं शताब्दी में राणा कुम्भा के शासनकाल में चित्तौड़ की टकसाल सर्वाधिक प्रमुख एवं सक्रिय रही, जहाँ से 'चित्तौड़ी टंका'[7] निर्गत होता था। कुम्भलगढ़ दुर्ग, जो कुम्भा का राजधानी-प्रतिरोधक केन्द्र था, में भी एक स्वतंत्र टकसाल स्थापित थी, जो 'कुम्भलगढ़ी टंका' का निर्माण करती थी। राणा सांगा के काल में, जब मेवाड़ की सत्ता मालवा तक विस्तारित हुई, तो चंदेरी की टकसाल को भी अपने अधिकार में कर लिया गया। मेवाड़ की टकसालें सल्तनत की टकसालों के विपरीत एक स्थानीय एवं क्षेत्रीय ढाँचे में संचालित होती थीं। टकसाल का प्रमुख अधिकारी, जो प्रायः 'सुवर्णकार'[8] अथवा 'मुद्राध्यक्ष' के रूप में जाना जाता था, शासक का अत्यंत विश्वसनीय सहयोगी होता था, क्योंकि मुद्रा-निर्माण का संपूर्ण एकाधिकार राज्य के हाथ में होता था।

7.2 धातुएँ

मुद्रा के जीवनचक्र की आयु एवं उसकी आर्थिक सक्रियता का निर्धारण उसकी मूल धातु से होता है। मेवाड़ के अरावली पर्वतमाला की खनिज-संपदा ने मुद्रा-उत्पादन के लिए आधारभूत कच्चा माल प्रदान किया।

- ***ताँबा:*** मेवाड़ की सर्वाधिक प्रचलित मुद्रा ताँबे अथवा मिश्रधातु (बिलोन) की थी। जावर (कुम्भलगढ़ के निकट) के ताम्र-खदान मुद्रा-उत्पादन के प्रमुख स्रोत थे। गुहिल शासकों के द्रम्म प्रायः ताँबे के थे। सैनिक वेतन एवं दैनिक व्यवहारों के लिए ताम्र-मुद्रा का उत्पादन अधिक होता था।
- ***चाँदी:*** चाँदी की मुद्रा (टंका) उच्च-मूल्य वाले व्यवहारों, विशाल भू-राजस्व के संग्रह एवं राजकीय उपहारों के लिए निर्मित होती थी। यद्यपि मेवाड़ में चाँदी के खदानों का प्राचुर्य ताँबे से कम था, परंतु सांगा के काल में मालवा एवं गुजरात के सुल्तानों पर विजय के बाद लूट की चाँदी को पुनः टकसाल में गलाकर स्वतंत्र टंका निर्मित किया गया।
- ***सोना:*** मेवाड़ में स्वर्ण-मुद्रा (गद्याणक अथवा मोहर) का उत्पादन अत्यंत सीमित एवं विशिष्ट अवसरों (राज्याभिषेक, विजय-उत्सव) पर होता था। अभिलेखों में 'सुवर्ण-द्रम्म' का उल्लेख मिलता है, परंतु पुरातात्त्विक रूप से मेवाड़ के स्वर्ण-सिक्के दुर्लभ हैं।
- ***मिश्रधातु:*** आर्थिक संकट एवं धातुगत कमी के दौरान, मेवाड़ के टकसालीय कर्मचारी ताँबे में चाँदी का अल्प मिश्रण करके बिलोन के सिक्के निर्मित करते थे। यह मुद्रा-उत्पादन का एक अवांछनीय परंतु अनिवार्य आर्थिक उपाय था, जो मुद्रा के जीवनचक्र में उसकी 'शुद्धता' के क्षरण का संकेत देता है।

7.3 निर्माण तकनीक

[7] मेवाड़ के सिसोदिया शासकों (विशेषतः राणा हम्मीर, कुम्भा एवं सांगा) द्वारा चित्तौड़ की टकसाल में निर्मित एक स्वतंत्र चाँदी अथवा मिश्रधातु का सिक्का, जो दिल्ली सल्तनत के टंका से भिन्न मानकीकरण एवं प्रतीकों (जैसे- सूर्य, नाग अथवा शासक का नाम) को अंकित करके मेवाड़ की राजनीतिक स्वाधीनता का प्रतिपादन करता था।

[8] प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय अभिलेखों में वर्णित एक राजकीय पदाधिकारी अथवा वर्ग, जो मुद्रा-निर्माण (टकसाल), धातु-शुद्धिकरण एवं राजकीय आभूषणों के निर्माण का कार्य करता था। मुद्रा-जीवनचक्र में यह उत्पादन-प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण तकनीकी एवं प्रशासनिक नियंत्रक होता था।

मेवाड़ की टकसालों में मुद्रा-निर्माण की तकनीक समकालीन भारतीय मानकों के समान परंतु अत्यंत सुक्ष्म थी। मुद्रा का जन्म लेना एक जटिल तकनीकी-श्रम-प्रक्रिया था।

- ***संचना विधि:*** गुहिल काल (9वीं-11वीं शताब्दी) की प्रारंभिक मुद्राओं, विशेषतः ताँबे के द्रम्मों, का निर्माण प्रायः संचना विधि से होता था। इस विधि में गर्म धातु को मिट्टी अथवा मृदा के सांचों में डाला जाता था। यह विधि सरल थी, परंतु इसका दोष यह था कि इससे निर्मित सिक्कों के किनारे असमान एवं शिल्प अस्पष्ट होता था।
- ***ढाल-विधि एवं हथौड़ा-अंकन:*** 14वीं-16वीं शताब्दी (हम्मीर, कुम्भा एवं सांगा काल) में मुद्रा-निर्माण की प्रमुख एवं अत्यंत विकसित विधि ढाल-अंकन थी। टकसाल में कुशल शिल्पकार पहले एक धातुई दंड को गलाकर एक निश्चित द्रव्यमान एवं व्यास की 'फ्लान' (गोल पत्ता) बनाते थे। तत्पश्चात्, इस फ्लान को दो धातुई ढालों के बीच रखकर एक भारी हथौड़े की एक तीव्र एवं सटीक चोट से अंकित किया जाता था। निचली ढाल पर सिक्के का अग्रभाग एवं ऊपरी ढाल पर पश्चभाग का शिल्प एवं लेख उकेरा होता था। ढाल-विधि से निर्मित 'चित्तौड़ी टंका' एवं 'कुम्भलगढ़ी टंका' अत्यंत सुगठित, शुद्ध एवं स्पष्ट अंकन वाले हैं, जो मेवाड़ की टकसालीय तकनीक की उच्च प्रौद्योगिकी के प्रमाण हैं।

7.4 मानकीकरण

मुद्रा का 'प्रचलन' चरण उसके उत्पादन के मानकीकरण की सटीकता पर निर्भर करता है। यदि मुद्रा का द्रव्यमान अथवा शुद्धता असमान है, तो बाजार में व्यापारियों का विश्वास डगमगाता है। मेवाड़ के शासकों ने इस विश्वास को स्थापित करने के लिए अत्यंत कठोर मानकीकरण की नीति अपनाई।

- ***द्रव्यमान:*** मेवाड़ की मुद्राओं का द्रव्यमान प्रायः प्राचीन 'रत्ती-मान'[9] अथवा माशा पर आधारित था। दिल्ली सल्तनत के 'टंका' का द्रव्यमान सामान्यतः 11 ग्राम था; मेवाड़ के शासकों ने अपनी स्वतंत्रता दर्शाने के लिए अपने टंके के द्रव्यमान को सल्तनती टंके से भिन्न (कुछ अधिक अथवा कुछ कम) रखा। राणा कुम्भा के चाँदी के टंके का द्रव्यमान सामान्यतः 9.5 से 10.5 ग्राम के बीच पाया जाता है, जो एक अलग मौद्रिक पहचान बनाता है।
- ***व्यास एवं शुद्धता:*** मुद्राओं का व्यास निश्चित परिसीमा में रखा गया, ताकि उनके ढाल-अंकन स्पष्ट रहें। धातु की शुद्धता का निरीक्षण टकसाल के प्रमुख द्वारा किया जाता था। चित्तौड़ी टंका में चाँदी की शुद्धता प्रायः 80-90 प्रतिशत थी। यद्यपि सैनिक संकटकाल (जैसे—बाबर के आक्रमण के समय) में शुद्धता में गिरावट दिखती है, परंतु सामान्यतः मेवाड़ के शासकों ने मुद्रा की 'गुणवत्ता' को अपनी राजनीतिक 'प्रतिष्ठा' के समान महत्व दिया।

7.5 शासकों की भूमिका एवं राजकीय नियंत्रण

मुद्रा-उत्पादन केवल एक आर्थिक नीति नहीं, अपितु राज्य-सत्ता का सबसे प्रभावशाली दृश्य-प्रतिपादन था। मध्यकालीन राजनीतिक-सिद्धांत के अनुसार, जो राज्य मुद्रा जारी करता है, वह स्वाधीन होता है। मेवाड़ के गुहिल एवं सिसोदिया शासकों ने इस सिद्धांत का कठोर पालन किया। अभिलेखों एवं मुद्राओं पर शासक के नाम (जैसे—'श्री हम्मीर', 'श्री कुम्भा', 'श्री सांगा'), उसके विशिष्ट राजनीतिक प्रतीक (जैसे - सूर्य, लिंग, अथवा युद्ध-हथियार 'परशु', एवं राजकीय श्रेष्ठता-वाचक शब्द (जैसे - 'महाराजाधिराज', 'रणराय') का अंकन मुद्रा-उत्पादन पर शासक का पूर्ण एकाधिकार एवं नियंत्रण स्थापित करता है। दिल्ली के सुल्तानों (अलाउद्दीन, बहादुरशाह) ने अनेक बार मेवाड़ की टकसालों को अपने अधिकार में करके सल्तनती मुद्राएँ जारी करने का प्रयास किया, परंतु स्वतंत्रता प्राप्त होने के तत्काल बाद मेवाड़ के राणा अपनी टकसालों को पुनः सक्रिय कर स्वतंत्र मुद्रा-उत्पादन आरंभ करते थे। यह मुद्रा के जीवनचक्र का सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक नियंत्रण-बिंदु था।

[9] प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में मुद्रा के द्रव्यमान के निर्धारण की एक प्राकृतिक एवं प्रचलित प्रणाली, जो 'रत्ती' (गुंजा के बीज, लगभग 0.11 ग्राम) के भार की गणितीय इकाई (जैसे- 32 रत्ती = 1 माशा) पर आधारित थी। मेवाड़ की मुद्राओं का द्रव्यमान इसी प्रणाली के विभिन्न अनुपातों में दिखता है।

7.6 उत्पादन के आर्थिक उद्देश्य

मेवाड़ में मुद्रा-उत्पादन का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक गतिविधियों को सुगम बनाना था, परंतु इसके पीछे अनेक विशिष्ट आर्थिक उद्देश्य शामिल थे, जो मुद्रा के आगामी प्रचलन की प्रक्रिया को निर्धारित करते थे:

- ***कर-प्रणाली:*** राज्य द्वारा कृषि-राजस्व (भाग, विष्टि) एवं व्यापारिक-कर (शुल्क) का संग्रह मुद्रा (टंका/द्रम्म) के रूप में किया जाता था। अभिलेखों में 'रूपक' में दान का विवरण इस बात का साक्ष्य है कि उत्पादन का एक बड़ा उद्देश्य कर-संग्रह की सुविधा था।
- ***सैनिक व्यवस्था:*** मेवाड़ का निरंतर संघर्षशील राजनीतिक दौर मुद्रा-उत्पादन की मात्रा को प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित करता था। राजपूत सैनिकों, अश्व-दल एवं मेवाड़ के विशिष्ट 'भील' सहायक-दलों को वेतन मुद्रा में दिया जाता था। बड़ी मात्रा में ताम्र-मुद्रा (द्रम्म) का उत्पादन इसी सैनिक-वित्त की अपार आवश्यकता के कारण होता था।
- ***व्यापारिक:*** चित्तौड़ एवं कुम्भलगढ़ के बाजारों में वस्तु-विनिमय के लिए एक मानकीकृत माध्यम की आवश्यकता थी। मुद्रा-उत्पादन इस विनिमय-माध्यम की पूर्ति करता था, ताकि व्यापारिक लेन-देन द्रव्य-माध्यम से संपन्न हो सकें।

स्पष्ट है कि मुद्रा के जीवनचक्र का यह प्रथम चरण (उत्पादन) अत्यंत जटिल एवं बहुआयामी था। यह केवल धातु का रूपांतरण नहीं, अपितु राज्य की राजनीतिक इच्छा, तकनीकी कुशलता एवं आर्थिक नीतियों का एक समन्वित-प्रक्रम था। टकसाल से प्राप्त यह नवजात मुद्रा अब अपने जीवनचक्र की द्वितीय एवं सर्वाधिक गतिशील अवस्था - 'प्रचलन' में प्रवेश करने के लिए पूर्णतः तैयार थी।

8. मुद्रा का प्रचलन

मुद्रा के जीवनचक्र में 'प्रचलन' उसका सक्रिय एवं गतिशील यौवन है। टकसाल के सुरक्षित प्रकोष्ठों से निर्गत होकर जब मुद्रा बाजार, व्यापारिक मार्गों एवं जन-साधारण की हथेली पर पहुँचती है, तब वह वस्तु-विनिमय की एक साधारण माध्यम से एक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक वाहक में परिवर्तित हो जाती है। यह चरण मुद्रा के जीवन में सबसे लंबा एवं प्रवाहशील होता है, जहाँ उसका अस्तित्व खनिज स्रोत से निकलकर एक अंतहीन आर्थिक चक्र में बंध जाता है। मध्यकालीन मेवाड़ में मुद्रा का प्रचलन एक विरोधाभासी अवस्था में विद्यमान था - एक ओर मेवाड़ की स्वतंत्र मुद्राएँ (चित्तौड़ी/कुम्भलगढ़ी टंका) राज्य के आंतरिक अर्थव्यवस्था को गतिशील कर रही थीं, दूसरी ओर सल्तनती एवं अन्य क्षेत्रीय मुद्राओं का सह-अस्तित्व मेवाड़ की अर्थव्यवस्था के बाह्य-संपर्क का प्रमाण था।

8.1 बाजार एवं शहरी केन्द्र

मुद्रा का प्रचलन उस बाजार में सर्वाधिक तीव्र होता है, जहाँ वस्तुओं का विनिमय द्रव्य-माध्यम से होता है। मेवाड़ में चित्तौड़, कुम्भलगढ़, नागदा एवं चावड़ प्रमुख शहरी केन्द्र थे। चित्तौड़ का 'मण्डपेश्वर' बाजार, जो राणा कुम्भा के काल में अत्यंत जीवंत था, मुद्रा-प्रचलन का सबसे बड़ा केन्द्र था। व्यापारिक वस्तुएँ - वस्त्र, धातु-उपकरण, अश्व, हस्ति एवं उत्तम शस्त्र का क्रय-विक्रय टंका एवं द्रम्म में संपन्न होता था। शहरी केन्द्रों में 'सेठ' एवं 'साहु' (व्यापारी वर्ग) मुद्रा के प्रचलन के सबसे प्रमुख वितरक थे। ये व्यापारी बड़ी मात्रा में चाँदी के टंके को संचित करते थे और दैनिक व्यवहारों के लिए ताम्र-द्रम्मों का विनिमय करते थे। यह शहरी बाजार मुद्रा के प्रचलन का वह स्थल था, जहाँ टकसालीय उत्पादन से आई मुद्रा अपनी पहली आर्थिक यात्रा पूर्ण करती थी।

8.2 व्यापारिक मार्ग एवं क्षेत्रीय संपर्क

मुद्रा का प्रचलन केवल एक बंद शहरी दीवार में सीमित नहीं होता; वह व्यापारिक मार्गों के समान तीव्र प्रवाह के रूप में चलती है। मेवाड़ का भौगोलिक स्थान (अरावली का दर्रा) उसे उत्तरी भारत (दिल्ली/आगरा) एवं पश्चिमी भारत (गुजरात का खंभात

पोत-बंदर) के बीच एक प्राकृतिक व्यापारिक नाडी बनाता था। गुजरात से आने वाली वस्तुएँ (सुगंधित द्रव्य, वस्त्र, मसाले) चित्तौड़ के माध्यम से आगे जाती थीं। इन अंतर-राज्यीय व्यापारिक मार्गों पर मेवाड़ की मुद्रा का प्रचलन सल्तनती मुद्राओं के साथ प्रतिस्पर्धा एवं सह-अस्तित्व में था। व्यापारिक मार्गों के सुरक्षित होने पर मुद्रा का प्रचलन निर्बाध होता था; परंतु जब मार्गों पर डाकुओं अथवा आक्रमणकारी सेनाओं का आतंक होता था, तब मुद्रा का प्रवाह रुक जाता था और उसका जीवनचक्र 'संचयन' की ओर मुड़ जाता था।

8.3 ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं स्थानीय विनिमय

शहरी केन्द्रों से दूर, मेवाड़ के ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मुद्रा का प्रचलन एक अलग एवं सीमित स्तर पर होता था। ग्रामीण कृषि-अर्थव्यवस्था प्रायः वस्तु-विनिमय पर आधारित थी - खाद्य-अन्न के लिए वस्त्र अथवा शस्त्र। परंतु, राजस्व-संग्रह के लिए राज्य द्वारा कर केवल मुद्रा (रूपक/टंका) में वसूलने की नीति ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मुद्रा के प्रचलन को अनिवार्य बना दिया। कृषक को अपनी फसल का एक भाग (भागकर) बाजार में बेचकर मुद्रा प्राप्त करनी पड़ती थी, ताकि वह राज्य को कर दे सके। इस प्रक्रिया में ताम्र-द्रम्मों का सर्वाधिक प्रचलन गाँव-स्तर पर होता था। ग्रामीण बाजारों (हाट/पेठ) में दैनिक उपयोगी वस्तुओं (नमक, तेल, गुड़) का क्रय द्रम्मों से होता था। अतः, राजस्व-नीति मुद्रा के जीवनचक्र में प्रचलन का एक अनिवार्य एवं बलाधारित प्रवर्तक थी।

8.4 कर प्रणाली एवं राजकीय व्यय

मुद्रा के प्रचलन का सबसे बड़ा एवं संस्थागत चक्र राज्य की कर-प्रणाली था। मेवाड़ के अभिलेखों में अनेक मौद्रिक करों का उल्लेख मिलता है - 'विष्टि' (विशेष कर), 'उपकर' (स्थानीय कर), एवं 'शुल्क' (व्यापारिक कर)। राज्य द्वारा संग्रहीत यह मौद्रिक कर पुनः राजकीय व्यय के माध्यम से प्रचलन में लौटता था। राणा कुम्भा एवं सांगा के काल में सैनिक वेतन, दुर्ग-निर्माण (कुम्भलगढ़), मंदिर-निर्माण (वित्त-दान) एवं राजकीय अनुष्ठानों पर अपार मुद्रा का व्यय होता था। यह प्रक्रिया मुद्रा के जीवनचक्र की चक्रीयता का सबसे स्पष्ट प्रमाण है: टकसाल → राजकीय निर्गमन → कर-संग्रह → राजकीय व्यय → पुनः बाजार। राज्य मुद्रा को खर्च करके पुनः कर के रूप में वसूल करता था, इसलिए मुद्रा का प्रचलन एक अंतहीन प्रवाह में बंधा रहता था।

8.5 विदेशी व्यापार एवं विभिन्न मुद्राओं का सह-अस्तित्व

मेवाड़ के मुद्रा-प्रचलन की एक अत्यंत विशिष्ट एवं विश्लेषणात्मक विशेषता विभिन्न मुद्राओं का सह-अस्तित्व था। मेवाड़ की अर्थव्यवस्था पूर्णतः एक बंद अर्थव्यवस्था नहीं थी; अंतर-राज्यीय व्यापार के कारण सल्तनती मुद्राएँ (दिल्ली का 'बलबनी टंका', गुजरात का 'महमूदी'[10] मेवाड़ के बाजारों में स्वतंत्र रूप से प्रचलित थीं। विदेशी व्यापारियों को मेवाड़ की स्वतंत्र मुद्रा स्वीकार्य थी, परंतु वे सल्तनती मुद्राओं को भी लेते थे। इस प्रकार, चित्तौड़ के बाजार में एक समान 'बहु-मौद्रिक-प्रचलन' विद्यमान था। यह सह-अस्तित्व दर्शाता है कि मेवाड़ की अर्थव्यवस्था में 'विनिमय-दर' का एक स्थानीय तार्किक संतुलन था - जैसे, 1 चित्तौड़ी टंका = 1.2 बलबनी टंका। यह विनिमय-दर मुद्रा की धातुगत शुद्धता एवं बाजार की माँग पर निर्भर करती थी।

8.6 सिक्कों का पुनःप्रचलन एवं अवमूल्यन

मुद्रा के जीवनचक्र में प्रचलन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष पुनःप्रचलन है। एक सिक्का जब बाजार में लंबे समय तक प्रचलित होता है, तो उसकी धातु में प्राकृतिक क्षरण होता है - द्रव्यमान में कमी एवं शिल्प का विकृत होना। व्यापारियों द्वारा ऐसे क्षतिग्रस्त सिक्कों को अवमूल्यित दर पर प्रचलित किया जाता था। दूसरी ओर, राजनीतिक परिवर्तनों (जैसे - सांगा द्वारा मालवा

[10] मध्यकालीन गुजरात सल्तनत (विशेषतः महमूद बेगडा के काल) में जारी एक प्रमुख एवं प्रचलित चाँदी अथवा बिलोन की मुद्रा, जो अपनी शुद्धता एवं व्यापारिक उपयोगिता के कारण गुजरात, मालवा एवं राजपूताना (मेवाड़) के बाजारों में अत्यंत सक्रिय प्रचलन में थी। मेवाड़ के बाजारों में इसका सह-अस्तित्व दिखता है।

के सुल्तान को पराजित करने पर) के बाद, प्रचलन में आई विदेशी मुद्राओं (महमूदी) को राजकीय आदेश से पुनः टकसाल में गलाकर मेवाड़ के नए सिक्के (चित्तौड़ी टंका) में परिवर्तित कर दिया जाता था। यह प्रक्रिया मुद्रा के जीवनचक्र का एक नवीन चक्र था - जहाँ एक मुद्रा का 'अवसान' दूसरी मुद्रा का 'जन्म' बन जाता है। सैनिक संकटकाल में, जब चाँदी की आपूर्ति कम हो जाती थी, तो मेवाड़ के शासक प्रचलन में आई पुरानी शुद्ध मुद्रा को बिलोन (मिश्रधातु) में परिवर्तित करके पुनःप्रचलन करते थे। यह आर्थिक नीति मुद्रा के जीवनचक्र में उसकी 'शुद्धता' के क्षरण का संकेत था, परंतु इससे प्रचलन में मुद्रा की मात्रा सुरक्षित रहती थी।

8.7 मुद्रा-प्रचलन की गतिविधियों का स्थानिक विश्लेषण

मुद्रा-प्रचलन का अध्ययन केवल मात्रागत नहीं, अपितु स्थानिक भी होना चाहिए। मेवाड़ की मुद्राओं की गतिविधि का क्षेत्र अरावली के भौगोलिक दर्रों तक सीमित था। चित्तौड़ की मुद्रा दक्षिण (मालवा/गुजरात) एवं पूर्व (बुंदेलखंड) की ओर प्रवाहित होती थी, परंतु दिल्ली की सीमा के निकट उसका प्रचलन सल्तनती मुद्राओं के समानांतर था। मुद्रा-प्रचलन का यह स्थानिक विस्तार मेवाड़ की राजनीतिक सत्ता के विस्तार का आर्थिक मानचित्र था - जहाँ राणा कुम्भा की सेना पहुँची, वहाँ कुम्भलगढ़ी टंका प्रचलित हुआ; जहाँ सांगा का प्रभाव हुआ, वहाँ चित्तौड़ी टंका व्यापारिक विनिमय का माध्यम बना।

8.8 प्रचलन में अवरोध एवं मुद्रा का अवसान

मुद्रा का सक्रिय जीवन (प्रचलन) निरंतर नहीं रहता; राजनीतिक अस्थिरता एवं सैनिक आक्रमण प्रचलन के सबसे बड़े अवरोधक हैं। मेवाड़ के इतिहास में अलाउद्दीन खिलजी (1303), बहादुरशाह गुजराती (1535) एवं बाबर (1527) के आक्रमणों के दौरान, बाजारों में मुद्रा-प्रचलन एकाएक स्तब्ध हो गया। व्यापारिक मार्ग असुरक्षित हो जाने के कारण व्यापारीों ने मुद्रा को प्रचलन में रखने के बजाय भूमिगत गर्तों में संचयन करना सुरक्षित समझा। यह मुद्रा के जीवनचक्र में वह निर्णायक बिंदु था, जहाँ मुद्रा अपने सक्रिय चरण (प्रचलन) से निष्क्रिय चरण (संचयन) में प्रवेश करती है। प्रचलन में इस अवरोध का प्रत्यक्ष पुरातात्त्विक साक्ष्य आक्रमण-स्थलों (चित्तौड़, कुम्भलगढ़) के निकट प्राप्त मुद्रा-निधियाँ हैं, जिनकी संरचना एवं संरक्षण-स्थल इस अवसान की कथा कहते हैं।

इस प्रकार, मुद्रा का प्रचलन-चरण मेवाड़ की आर्थिक जीवंतता का सबसे जीवंत प्रमाण था, जो बाजार, राजस्व, व्यापार एवं विदेशी-मुद्राओं के समन्वय से चलता था। परंतु, यह चरण अस्थायी था; राजनीतिक आंधी के एक झोके में मुद्रा का प्रवाह रुक जाता था और वह अपने जीवनचक्र के तीसरे एवं अंतिम चरण - 'संचयन' की ओर चली जाती थी।

9. मुद्रा का संचयन

मुद्रा के जीवनचक्र का तीसरा एवं अंतिम चरण 'संचयन' है। यदि 'उत्पादन' मुद्रा का जन्म है और 'प्रचलन' उसका सक्रिय यौवन, तो 'संचयन' उसकी निष्क्रिय अवस्था - वानप्रस्थ अथवा अवसान- है। प्रचलन के तीव्र एवं अंतहीन प्रवाह में मुद्रा जब अपनी गति खो देती है, जब बाजार की चक्रीयता रुक जाती है, अथवा जब राजनीतिक-सैनिक संकट आर्थिक तरलता को स्तब्ध कर देते हैं, तब मुद्रा प्रचलन से बाहर निकलकर संचयन के गर्तों में विश्राम करती है। यह संचयन मुद्रा का 'मृत्यु' नहीं, अपितु एक 'गहन निद्रा' है, जिसमें वह पुरातात्त्विक साक्ष्य के रूप में आधुनिक शोधकर्ताओं के लिए अपनी पूर्व यात्रा (उत्पादन एवं प्रचलन) की संपूर्ण कथा संजो कर रखती है। मेवाड़ के संदर्भ में, मुद्रा-संचयन का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह क्षेत्र निरंतर युद्धों एवं आक्रमणों का साक्षी रहा, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ अत्यधिक मात्रा में मुद्रा-निधियों का संचयन हुआ।

9.1 मुद्रा-निधियाँ

मुद्रा-निधि, मुद्रा-जीवनचक्र के संचयन-चरण का सबसे ठोस एवं प्रत्यक्ष पुरातात्त्विक प्रमाण है। मेवाड़ के विभिन्न पुरातात्त्विक स्थलों - चित्तौड़, नागदा, कुम्भलगढ़, देवली एवं मानपुर, से प्राप्त मुद्रा-निधियाँ इस बात का निर्वादी साक्ष्य हैं कि संचयन एक

अत्यंत सुविचारित एवं उद्देश्यपूर्ण मानवीय कार्य था। मुद्रा-निधियों का वर्गीकरण उनके संचयन के कारणों के आधार पर किया जा सकता है:

संकटकालीन निधि: ये वे निधियाँ हैं, जो एक अप्रत्याशित सैनिक आक्रमण (जैसे - अलाउद्दीन खिलजी का 1303 ई. का आक्रमण, बहादुरशाह गुजराती का 1535 ई. का आक्रमण अथवा बाबर का 1527 ई. का आक्रमण) के दौरान तत्काल सुरक्षा के लिए भूमिगत की गई थीं। इन निधियों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें मुद्राएँ अत्यंत शुद्ध, सुसंगत एवं प्रचलन में सक्रिय थीं, जिन्हें बाजार से तत्काल निकालकर मिट्टी के बर्तनों अथवा धातुई पात्रों में दुर्ग-प्राचीर के निकट गहरे गर्तों में छिपा दिया गया। आक्रमणकारी द्वारा नगर को जला देने अथवा निवासियों के मृत्यु/पलायन के कारण ये निधियाँ पुनः प्रचलन में नहीं लौट सकीं एवं उनका जीवनचक्र यहीं स्तब्ध हो गया।

संपत्ति-निधि: ये वे निधियाँ हैं, जो व्यापारियों अथवा सामान्य निवासियों द्वारा दीर्घकालीन आर्थिक सुरक्षा के लिए, संकट की अनुपस्थिति में भी, संचित की गई थीं। इन निधियों में मुद्राओं का द्रव्यमान एवं शुद्धता में विविधता पायी जाती है, जो लंबे समय के प्रचलन एवं संचयन का प्रमाण है।

मुद्रा-निधियों का स्थानिक विश्लेषण इस बात को स्पष्ट करता है कि संचयन का चयन बाजारों, दुर्गों एवं व्यापारिक मार्गों के अत्यंत निकट होता था - यह उन स्थानों की प्रचलन-तीव्रता का आईना है, जहाँ मुद्रा सबसे अधिक मात्रा में विद्यमान थी।

9.2 मंदिर

मध्यकालीन मेवाड़ में मंदिर मुद्रा-संचयन के सबसे प्रमुख, सुरक्षित एवं संस्थागत केन्द्र थे। मंदिर केवल धार्मिक-आस्था के स्थल नहीं, अपितु एक विशाल 'बैंक' का कार्य भी करते थे। राणा कुम्भा द्वारा निर्मित कुम्भस्वामी मंदिर (चित्तौड़), वित्तलदेव मंदिर एवं एकलिंगजी मंदिर (उदयपुर) में अपार मौद्रिक दान शासकों, सामान्य जन एवं व्यापारियों द्वारा दिए जाते थे। यह दान मुद्रा के जीवनचक्र का एक निर्णायक परिवर्तन था - मुद्रा बाजार के 'व्यावसायिक-प्रचलन' से निकलकर मंदिर के 'धार्मिक-संचयन' में प्रवेश करती थी। मंदिर में संचित मुद्रा पुनः बाजार में प्रचलित नहीं होती थी; वह वहीं स्तब्ध हो जाती थी। इस संचयन का एक आर्थिक दुष्परिणाम यह था कि बाजार में तरलता कम हो जाती थी, परंतु एक अदृश्य लाभ यह था कि आक्रमणकारियों (जैसे - अलाउद्दीन) के लिए मंदिर मुद्रा-प्राप्ति का प्रमुख आकर्षण थे। आक्रमणकारी द्वारा मंदिर-संचयन को लूट लेना मुद्रा के जीवनचक्र का एक अत्यंत हिंसक एवं अनपेक्षित विच्छेद था, जिससे संचित मुद्रा पुनः आक्रमणकारी राज्य की टकसाल में गलाकर एक नवीन जीवनचक्र (नया जन्म) प्राप्त करती थी।

9.3 मठ एवं ब्राह्मण-दान

मंदिरों के समान, मठ एवं अग्रहार भी मुद्रा-संचयन के महत्वपूर्ण स्रोत थे। मेवाड़ के शासकों द्वारा विद्वान ब्राह्मणों को ताम्रपत्रों में 'दक्षिणा' के रूप में दी गई मुद्रा एवं भू-दान, मुद्रा के प्रचलन से उसे निकालकर एक निश्चित एवं सुरक्षित व्यक्तिगत-संचयन में बदल देता था। ब्राह्मण वर्ग प्रायः अपनी दक्षिणा-मुद्रा को व्यवसाय में नहीं लगाता था, अपितु उसे सामाजिक-प्रतिष्ठा एवं सुरक्षा के निशानी के रूप में संजो कर रखता था। मठों में संचित धन अत्यंत विशाल होता था, जो सामान्य आर्थिक प्रवाह से बाहर एक 'स्थिर-पूँजी' का निर्माण करता था।

9.4 व्यापारी वर्ग

मेवाड़ के व्यापारिक वर्ग (सेठ/साहु) मुद्रा-जीवनचक्र के प्रचलन एवं संचयन के बीच एक अत्यंत द्विध्रुवीय भूमिका निभाते थे। एक ओर, वे मुद्रा-प्रचलन के सबसे बड़े वितरक थे; दूसरी ओर, वे सबसे बड़े संचयकर्ता भी थे। व्यापारियों को अंतर-राज्यीय व्यापार के लिए एक विशाल मौद्रिक-पूँजी की आवश्यकता होती थी, जिसे वे सुरक्षित गृहों में संचित करते थे। परंतु, राजनीतिक अस्थिरता (संकटकाल) में व्यापारियों का यह संचयन 'भूमिगत निधि' के रूप में परिवर्तित हो जाता था। व्यापारी अपने चाँदी के टंकों एवं सल्तनती मुद्राओं को भूमि में दबा देते थे और पलायन कर जाते थे। यदि व्यापारी युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होता

अथवा पुनः लौटने में असमर्थ होता, तो उसका यह संचयन एक 'अनाम-निधि' बन जाता था, जो सदा के लिए प्रचलन से बाहर हो गई। व्यापारियों का यह संचयन वस्तुतः मुद्रा की 'तरलता' को 'शुष्कता' में बदलने की प्रक्रिया थी।

9.5 युद्धकालीन संचयन

मेवाड़ के इतिहास में संचयन का सबसे प्रमुख एवं तीव्र कारण युद्धकालीन संकट था। मुद्रा के जीवनचक्र में उसका प्रचलन से संचयन में परिवर्तन एक अत्यंत तीव्र एवं अनपेक्षित घटना था। जब दिल्ली सल्तनत अथवा गुजरात की सेना चित्तौड़ की प्राचीर पर आ जाती थी, तब बाजार एकाएक स्तब्ध हो जाते थे; व्यापारी अपनी दुकानें बंद कर देते, कृषक गाँव छोड़ देते, एवं राजकीय टकसाल सक्रियता खो देती। इस युद्धकालीन परिस्थिति में, निवासियों द्वारा मुद्रा को प्रचलन में रखना अत्यंत असुरक्षित हो जाता था। सिक्कों को तत्काल भूमिगत कर दिया जाता था - दीवारों की खाली जगहों में, घर के आंगन के नीचे, अथवा बाहर खेतों में। यह युद्धकालीन संचयन मुद्रा के जीवनचक्र का वह निर्णायक अवसान था, जहाँ सिक्का अपने सक्रिय जीवन को त्याग कर एक 'पुरावशेष' में परिवर्तित हो गया। चित्तौड़ के जौहर के बाद प्राप्त मुद्रा-निधियाँ इस युद्धकालीन-संचयन का सबसे मार्मिक एवं विश्लेषणात्मक साक्ष्य हैं - ये निधियाँ वहाँ की आर्थिक जीवंतता की अंतिम गर्जना थीं, जिन्हें मृत्यु के पूर्व भूमि को सौंप दिया गया।

9.6 सामाजिक सुरक्षा के रूप में मुद्रा

मध्यकालीन समाज में आधुनिक 'बैंकिंग-प्रणाली' की अनुपस्थिति में, मुद्रा-संचयन सामाजिक सुरक्षा का एकमात्र विकल्प था। कृषि-आधारित समाज में वर्षा की अनिश्चितता एवं फसल-विफलता के कारण निर्मित आर्थिक संकट को पार करने के लिए कृषक एवं सामान्य निवासी अपनी अल्प-मुद्रा को गृह-संचयन में रखते थे। 'स्त्रीधन' की प्रथा मेवाड़ की एक अत्यंत जीवंत सामाजिक-परंपरा थी, जिसमें विवाह के समय कन्या को दी गई मुद्रा (चाँदी के टंके अथवा स्वर्ण-मुद्रा) उसकी व्यक्तिगत-सुरक्षा के निशानी के रूप में संचित की जाती थी। यह सामाजिक-संचयन मुद्रा के जीवनचक्र में वह अवस्था थी, जहाँ मुद्रा एक 'विनिमय-माध्यम' से एक 'सामाजिक-अवलम्ब' की भूमिका में परिवर्तित हो जाती थी। इस संचयन का उद्देश्य प्रचलन से प्राप्त 'लाभ' नहीं, अपिति अनागत अनिश्चितता से 'सुरक्षा' था।

9.7 संचयन एवं आर्थिक संकट

मुद्रा-जीवनचक्र के विश्लेषण में एक अत्यंत महत्वपूर्ण आर्थिक-तार्किक सिद्धांत यह है कि अत्यधिक संचयन स्वयं आर्थिक संकट का निर्माता होता है। मुद्रा का जीवनचक्र एक चक्रीय प्रवाह है, जिसमें उत्पादन → प्रचलन → पुनःउत्पादन का लूप निरंतर चलता रहना चाहिए। जब बड़ी मात्रा में मुद्रा प्रचलन से निकलकर मंदिरों, मठों, व्यापारियों अथवा भूमिगत-निधियों में संचित हो जाती है, तब बाजार में मुद्रा की तरलता एकाएक सूख जाती है।

मेवाड़ के संदर्भ में, जब संकटकालीन-संचयन (के कारण बाजार में चित्तौड़ी टंका अथवा ताम्र-द्रम्म दिखने बंद हो गए, तो एक गहन 'मौद्रिक-संकट' उत्पन्न हुआ। व्यापारी वस्तुएँ खरीदने में असमर्थ हो गए, कृषक कर देने में असमर्थ हो गए, एवं राज्य सैनिक वेतन देने में अक्षम हो गया। इस आर्थिक संकट को पार करने के लिए मेवाड़ के शासकों को दो नीतिगत उपाय अपनाने पड़ते थे:

- *मुद्रा-अवमूल्यन:* प्रचलन में मुद्रा की कमी को पूर्ण करने के लिए टकसाल में सिक्कों की शुद्धता को कम करके (बिलोन में) अधिक मात्रा में सिक्कों का निर्माण किया जाता था।
- *पुनःप्रचलन :* आक्रमणकारियों की सेना के पलायन के बाद, राज्य द्वारा भूमिगत निधियों को पुनः खोजने एवं प्रचलन में लाने का प्रयास किया जाता था।

इस प्रकार, 'संचयन' मुद्रा के जीवनचक्र का वह निर्णायक बिंदु है, जहाँ एक ओर मुद्रा अपने जीवनचक्र का अंत दर्शाती है, दूसरी ओर वह आर्थिक संकट का कारण बनकर एक नवीन जीवनचक्र (नया उत्पादन/अवमूल्यन) की अनिवार्यता को जन्म देती है। यही मुद्रा-जीवनचक्र की सबसे गहन विश्लेषणात्मक प्रस्थिति है - अंत एवं जन्म एकाएक जुड़े हुए हैं।

10. मुद्राशास्त्रीय विश्लेषण

मुद्रा के जीवनचक्र की सैद्धांतिक रूपरेखा को प्रमाणित करने हेतु मेवाड़ की मुद्राओं का शुद्ध मुद्राशास्त्रीय विश्लेषण आवश्यक है। यह विश्लेषण सिक्कों का विवरणात्मक वर्गीकरण नहीं, अपितु शिल्पों, लेखों, धातुगत संरचना एवं द्रव्यमान के माध्यम से अंतर्निहित राजनीतिक-आर्थिक विमर्श को डिकोड करने का प्रयास है। मेवाड़ का सिक्का एक 'छोटा दस्तावेज' था, जो शासक की सत्ता एवं राज्य की आर्थिक स्वस्थता का द्योतक था।

- ***टाइपोलॉजी, धातु-विश्लेषण एवं द्रव्यमान मानकीकरण:*** मेवाड़ की मुद्राओं का टाइपोलॉजिकल विकास गुहिलों से सिसोदियों तक एक चरणबद्ध तकनीकी यात्रा दर्शाता है। प्रारंभिक गुहिल मुद्राएँ (9वीं-12वीं शताब्दी) अस्पष्ट शिल्पों एवं संचना-विधि का प्रयोग करती थीं - जो प्रारंभिक टकसालीय प्रयोगशीलता का सूचक है। परंतु, राणा कुम्भा एवं सांगा के सिक्कों में परिपक्व टाइपोलॉजी: नियमित वृत्ताकार फ्लान एवं ढाल-विधि की सटीकता दिखती है। धातुगत-संरचना मुद्रा-जीवनचक्र की आर्थिक-स्वस्थता का बारोमीटर है। कुम्भा के प्रारंभिक टंकों में चाँदी की शुद्धता (85-90%) एक सुस्थ अर्थव्यवस्था का प्रमाण है। परंतु, सल्तनत के साथ निरंतर संघर्षों के कारण सैनिक-व्यय बढ़ा, जिससे 'अवमूल्यन' आरंभ हुआ। सांगा के उत्तरार्द्ध एवं उदयसिंह के काल में शुद्ध चाँदी का स्थान बिलोन (ताँबे में अल्प चाँदी) एवं ताँबे ने ले लिया; द्रव्यमान में भी असमानता आ गई। यह धातुगत-क्षरण मुद्रा-जीवनचक्र में प्रचलन-संकट एवं उत्पादन-अवमूल्यन का निर्णायक संकेत है।
- ***लेख, लिपि एवं प्रतीक-विज्ञान:*** मुद्रा पर अंकित लेख एवं शिल्प शासक का सार्वभौमिक-प्रसारण हैं। सल्तनत की अरबी-फारसी मुद्राओं के विपरीत, मेवाड़ के सिसोदिया शासकों ने अपनी मुद्राओं पर देवनागरी लिपि एवं संस्कृत-शब्दों ('श्री हम्मीर', 'श्री कुम्भा') का सुनिश्चित प्रयोग किया। यह न केवल भाषा-विमर्श है, अपितु एक स्पष्ट सांस्कृतिक-प्रतिरोध एवं स्वाधीनता-द्योतक है। नागरी लिपि में लिखा सिक्का बाजार में प्रचलित होकर यह संदेश देता था कि मेवाड़ सल्तनत के अधिकार क्षेत्र से बाहर एक स्वतंत्र राज्य है। प्रतीक-विज्ञान में सूर्य (सूर्यवंशी उत्पत्ति-दावा), नंदी (राज-देवता एकलिंगजी), एवं परशु (निरंतर युद्धशील स्वभाव) का अंकन मेवाड़ के राजपूत-दर्शन का लघु-चित्रण है। यह प्रतीकवाद उत्पादन में शासक द्वारा सत्ता-पहचान को रूपांतरित करने की नीति थी, जो प्रचलन में जन-मानस को प्रभावित करती थी।
- ***राजनीतिक प्रतीकवाद, आर्थिक संकेतक एवं कालक्रम:*** मेवाड़ की मुद्रा राजनीतिक-प्रतीकवाद एवं आर्थिक-संकेतक की द्विविधा को समाहित करती है। राजनीतिक दृष्टि से, स्वतंत्र टकसालीय-उत्पादन एवं शासक-नाम का अंकन सत्ता-स्वाधीनता का अकाट्य प्रमाण है; आर्थिक दृष्टि से, मुद्रा का अवमूल्यन एवं विविध-निधियों में सल्तनती मुद्राओं का सह-अस्तित्व प्रचलन की विस्तृत-गतिविधि का संकेतक है। मुद्राशास्त्रीय-कालक्रम अभिलेखागत साक्ष्यों से सुसंगत है; कुम्भा एवं सांगा की मुद्रा-शृंखला उनके दीर्घ एवं सक्रिय शासनकाल की प्रतिपादक है, जबकि कुछ अन्तरिम शासकों के दुर्लभ सिक्के उनके संकटमय एवं अल्पकालिक शासन (राजनीतिक अस्थिरता) को चित्रित करते हैं।

इस प्रकार, मुद्राशास्त्रीय विश्लेषण सिद्ध करता है कि मेवाड़ की मुद्रा एक निष्क्रिय धातु-पिंड नहीं, अपितु जीवनचक्र की तीनों अवस्थाओं (उत्पादन-प्रचलन-संचयन) का एक सजग एवं सक्रिय वाहक थी, जिसकी प्रत्येक रेखा एवं धातुगत-क्षरण एक ऐतिहासिक-विमर्श कहता है।

11. मुद्रा का जीवनचक्र: एक समेकित विश्लेषण

वर्तमान शोधपत्र की समस्त मौलिकता एवं सैद्धांतिक ढाँचा इसी समेकित विश्लेषण में निहित है, जहाँ मुद्रा के उत्पादन, प्रचलन एवं संचयन - इन तीन विलग दिखने वाले चरणों को एक सतत, अंतर्संबंधित एवं गतिशील 'जीवनचक्र' के रूप में पुनर्रचित किया जाता है। मेवाड़ की मुद्रा एक स्थिर धातु-पिंड नहीं थी; वह एक गतिशील आर्थिक-सामाजिक इकाई थी, जो अपने जन्म (टकसाल) से लेकर अपने अवसान (मुद्रा-निधि) तक एक निर्धारित प्रवाह-पथ में यात्रा करती थी। यह यात्रा एक वृत्तीय प्रवाह थी, जिसमें एक चरण का अंत दूसरे चरण का जन्म निर्धारित करता था।

मेवाड़ के मुद्रा-जीवनचक्र का यह समेकित 'प्रवाह-निदर्श' इस प्रकार है:

खनिज स्रोत (अरावली) → धातु-आपूर्ति (ताँबा/चाँदी) → टकसाल (चित्तौड़/कुम्भलगढ़) → निर्माण/उत्पादन (ढाल-विधि/शुद्धता) → राजकीय निर्गमन (सैनिक वेतन/दान) → कर-संग्रह (राजस्व/शुल्क) → व्यापारिक मार्ग (अजमेर-गुजरात) → ग्रामीण बाजार (द्रम्म/दैनिक व्यवहार) → शहरी बाजार (टंका/बहु-मौद्रिक प्रचलन) → धार्मिक संस्थाएँ (मंदिर/मठ) → संचयन (गृह-निधि/स्त्रीधन) → संकटकालीन निधि (युद्ध/जौहर) → पुरातात्त्विक साक्ष्य (होर्ड्स/एपिग्राफी) → आधुनिक शोध (मुद्राशास्त्र)

इस 'प्रवाह-निदर्श' का विश्लेषणात्मक विन्यास मुद्रा के जीवन की तीन अवस्थाओं को स्पष्ट करता है:

- ***जन्म एवं प्रवेश:*** अरावली के खनिजों से निकली धातु, टकसाल के प्रकोष्ठों में प्रवेश करके 'शासक-नाम' एवं 'प्रतीक' (सूर्य/परशु) से संपुष्ट होती है। यह उत्पादन-चरण है, जहाँ धातु एक 'सत्ता-वाहक' की शक्ति प्राप्त करता है। राजकीय निर्गमन इस नवजात मुद्रा को बाजार में 'प्रचलन' की द्वार-दृष्टि पर पहुँचाता है।
- ***सक्रिय यौवन:*** बाजार में प्रवेश करने पर मुद्रा अपनी सर्वाधिक गतिशील अवस्था में प्रवाहित होती है। व्यापारिक मार्गों, शहरी-ग्रामीण बाजारों, एवं सल्तनती-मुद्राओं के सह-अस्तित्व में वह निरंतर विनिमय होती है। राज्य द्वारा इसे कर के रूप में पुनः संग्रह कर लेना, मुद्रा-जीवनचक्र की वृत्तीय-प्रवाह-प्रक्रिया है, जिससे मुद्रा पुनः राजकीय-निर्गमन में लौटती है। यह चरण मुद्रा की तरलता एवं आर्थिक-जीवंतता का सूचक है।
- ***निष्क्रिय अवसान एवं पुनर्जन्म:*** जब राजनीतिक आंधी (सैनिक आक्रमण) इस वृत्तीय प्रवाह को रोक देती है, तब मुद्रा अपनी गतिशीलता खो देती है। प्रचलन से निकलकर वह मंदिरों, गृहों एवं भूमिगत गर्तों में संचित हो जाती है। यह संचयन-चरण मुद्रा का 'अवसान' प्रतीत होता है, परंतु विश्लेषणात्मक दृष्टि से यह एक 'गहन निद्रा' है। यह संचित मुद्रा पुरातात्त्विक साक्ष्य के रूप में आधुनिक शोधकर्ताओं द्वारा पुनः खोजी जाती है, जिससे उसका बौद्धिक-पुनर्जन्म होता है। दूसरी ओर, आर्थिक-संकट के कारण संचयन से उत्पन्न 'तरलता-शून्यता' राज्य को पुनः नवीन मुद्रा-उत्पादन (अवमूल्यन/बिलोन) के लिए बाध्य करती है, जिससे एक नवीन जीवनचक्र का जन्म होता है।

यह समेकित विश्लेषण स्पष्ट करता है कि मेवाड़ की अर्थव्यवस्था एक यांत्रिक व्यवस्था नहीं, अपितु एक प्राणित जीवनचक्र थी, जहाँ उत्पादन, प्रचलन एवं संचयन एक-दूसरे के नियंत्रक एवं प्रवर्तक थे। सिक्के की यह गतिशील यात्रा ही मध्यकालीन मेवाड़ के आर्थिक इतिहास की सबसे ठोस एवं विश्लेषणात्मक कथा है।

12. निष्कर्ष

वर्तमान शोधपत्र का अवलोकन एक अत्यंत स्पष्ट एवं अकाट्य ऐतिहासिक-सत्य की प्रतिपादन करता है: मध्यकालीन मेवाड़ की मुद्रा केवल एक विनिमय-माध्यम अथवा राजनीतिक-प्रचार-पत्र नहीं थी, अपितु वह एक गतिशील, सतत एवं परस्पर-निर्भर आर्थिक-सामाजिक जीवनचक्र की वाहक थी। प्रचलित इतिहास-लेखन एवं मुद्राशास्त्रीय परंपराओं, जिन्होंने सिक्कों को एक 'स्थिर-पुरावशेष' के रूप में केवल विवरणात्मक-सूचीबद्ध किया, के विपरीत, यह शोध मुद्रा को एक जीवंत-इकाई के

रूप में स्थापित करता है, जो उत्पादन (जन्म), प्रचलन (यौवन) एवं संचयन (अवसान/निद्रा) की एक निर्धारित यात्रा पूर्ण करती है।

प्रमुख निष्कर्ष:

- ***मुद्रा-उत्पादन एवं राजनीतिक-स्वाधीनता:*** मेवाड़ के गुहिल एवं सिसोदिया शासकों द्वारा दिल्ली सल्तनत की प्रत्यक्ष-सैनिक-धौंस के बीवजूद स्वतंत्र टकसालों (चित्तौड़, कुम्भलगढ़) का संचालन एवं 'चित्तौड़ी टंका' का निर्माण, मुद्रा-जीवनचक्र के प्रथम चरण (उत्पादन) का सबसे शक्तिशाली राजनीतिक-द्योतक है। नागरी लिपि एवं राजपूत-प्रतीकों (सूर्य, परशु) का अंकन उत्पादन-चरण में ही सांस्कृतिक-प्रतिरोध का मौद्रिक-मंत्रव्य निर्धारित करता है।
- ***प्रचलन की वृत्तीय-गतिशीलता:*** मुद्रा का सक्रिय-जीवन (प्रचलन) मेवाड़ की आर्थिक-जीवंतता का बेरोमीटर था। राजकीय-निर्गमन → बाजार-विनिमय → कर-संग्रह → पुनः राजकीय-व्यय का यह वृत्तीय-प्रवाह, जिसमें चित्तौड़ी टंका एवं सल्तनती मुद्राओं का सह-अस्तित्व शामिल था, सिद्ध करता है कि मेवाड़ की अर्थव्यवस्था एक बंद-कक्ष नहीं, अपितु एक व्यापारिक-तरलता से संपन्न व्यवस्था थी।
- ***संचयन एवं आर्थिक-अवसाद:*** युद्धकालीन-संकट (खिलजी, गुजराती अथवा मुगल आक्रमण) मुद्रा-जीवनचक्र के सबसे भयावह-विच्छेदक थे। जब प्रचलन की तरलता एकाएक स्तब्ध हो गई, तब मुद्रा 'संचयन' (भूमिगत-निधियाँ, मंदिर-संपत्ति) में पलायन कर गई। यह संचयन न केवल मुद्रा का अवसान था, अपितु इसने बाजार में एक गहन 'तरलता-शून्यता' निर्मित की, जिसके परिणामस्वरूप राज्य को मुद्रा-अवमूल्यन की अनिवार्यता स्वीकार करनी पड़ी। अतः, संचयन ने एक नवीन, परंतु शुद्धता-हीन जीवनचक्र का जन्म दिया।

भविष्य-शोध-संभावनाएँ:

वर्तमान शोध मेवाड़ के मुद्रा-जीवनचक्र की एक सैद्धांतिक-रूपरेखा प्रस्तुत करता है, परंतु इस विमर्श को और अधिक प्रमाणित एवं वैज्ञानिक बनाने के लिए आगामी शोधकर्ताओं के लिए अनेक द्वार उन्मुक्त हैं:

- ***वैज्ञानिक-धातु-विश्लेषण:*** मेवाड़ की मुद्राओं (विशेषतः राणा कुम्भा एवं सांगा के टंके) की धातुगत-शुद्धता एवं अवमूल्यन-अनुपात का अध्ययन XRF (X-ray Fluorescence) अथवा SEM-EDX जैसी आधुनिक-प्रौद्योगिकी द्वारा किया जाना आवश्यक है, ताकि जीवनचक्र के 'उत्पादन' चरण में आर्थिक-संकट के वैज्ञानिक-साक्ष्य प्राप्त हो सकें।
- ***स्थानिक-मानचित्रण:*** मेवाड़ एवं राजपूताना से प्राप्त मुद्रा-निधियों के प्राप्ति-स्थलों का GIS आधारित स्थानिक-मानचित्रण किया जाना चाहिए, ताकि प्रचलन-चरण के व्यापारिक-मार्गों एवं संचयन-चरण की सैनिक-संकट-भूगोल का एक सटीक-नक्शा निर्मित हो सके।
- ***तुलनात्मक-जीवनचक्र-अध्ययन:*** मेवाड़ के मुद्रा-जीवनचक्र की इस अवधारणा को मारवाड़ (राठौर), जयपुर (कच्छवाह) अथवा बुंदेलखंड के समकालीन राजपूत-राज्यों के साथ तुलनात्मक-अध्ययन में रखकर देखा जाना चाहिए, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि क्या मुद्रा-संकट एवं अवमूल्यन मेवाड़ की विशिष्ट-संकटमय-राजनीति का परिणाम था, अथवा यह मध्यकालीन राजपूताना की एक सामान्य-आर्थिक-विशेषता थी?

13. परिशिष्ट

तालिका-1: मेवाड़ के प्रमुख शासकों की मुद्राएँ

शासक (वंश)	समयावधि	मुद्रा-नाम	धातु	अग्रभाग	पश्चभाग	टकसाल-स्थल
भर्तृपट्ट (गुहिल)	9वीं शताब्दी	द्रम्म	ताँबा	अस्पष्ट-शिल्प (संचना)	लेख-विहीन	नागदा/चावड़
अल्लट (गुहिल)	10वीं शताब्दी	द्रम्म	ताँबा/बिलोन	स्थानीय-प्रतीक	नागरी-अक्षर (अल्प)	नागदा
राणा हम्मीर (सिसोदिया)	14वीं शताब्दी	चित्तौड़ी टंका	चाँदी	'श्री हम्मीर' (नागरी)	सूर्य/नंदी	चित्तौड़
राणा कुम्भा (सिसोदिया)	15वीं शताब्दी	कुम्भलगढ़ी टंका	चाँदी/बिलोन	'श्री कुम्भा'	परशु (युद्ध-हथियार)	कुम्भलगढ़/चित्तौड़
राणा सांगा (सिसोदिया)	16वीं शताब्दी	चित्तौड़ी टंका	चाँदी/बिलोन	'श्री सांग्राम सिंह'	सूर्य/नंदी	चित्तौड़/चंदेरी
राणा उदयसिंह (सिसोदिया)	16वीं शताब्दी	उदयपुरी टंका	ताँबा/बिलोन	'श्री उदयसिंह'	सूर्य	उदयपुर (प्रारंभिक)

तालिका-2: मेवाड़ की मुद्राओं का धातु-वर्गीकरण एवं शुद्धता-प्रवणता

धातु-वर्ग	प्रारंभिक-शुद्धता (15वीं शताब्दी)	संकटकालीन-शुद्धता (16वीं शताब्दी)	आर्थिक-द्योतक
चाँदी	85-90% (कुम्भा काल)	30-40% (उदयसिंह काल)	आर्थिक-सुस्थता → सैनिक-संकट
बिलोन	अल्प-मात्रा (विशिष्ट-व्यवहार)	प्रमुख-मात्रा (सामान्य-व्यवहार)	तरलता-शून्यता की पूर्ति
ताँबा	द्रम्म (ग्रामीण-व्यवहार)	टंका-स्तर (मुद्रा-अवमूल्यन)	अत्यधिक-मौद्रिक-संकट
सोना	अत्यंत-दुर्लभ (राजकीय-दान)	लगभग-अनुपस्थित	धन-संचयन का सामाजिक-रूप

तालिका-3: मेवाड़ की मुद्राओं का द्रव्यमान-मानकीकरण

शासक-काल	मुद्रा-इकाई	आदर्श-द्रव्यमान	वास्तविक-द्रव्यमान	मानक-विचलन	जीवनचक्र-संकेतक
कुम्भा काल	टंका (चाँदी)	~11.0 ग्राम (सल्तनती-समान)	9.5 - 10.5 ग्राम	स्वतंत्र-मानक (कुछ भिन्न)	स्वाधीन-उत्पादन
सांगा काल	टंका (बिलोन)	~10.5 ग्राम	8.5 - 9.5 ग्राम	द्रव्यमान-कमी	प्रचलन-संकट आरंभ
उदयसिंह काल	टंका (ताँबा)	~9.5 ग्राम	7.0 - 8.5 ग्राम	अत्यधिक-विचलन	अवमूल्यन/जीवनचक्र-पतन

तालिका-4: मेवाड़ की प्रमुख मुद्रा-निधियाँ

निधि-स्थल	निधि का संभावित-काल	प्रमुख-मुद्राएँ	निधि-वर्गीकरण	जीवनचक्र का अवसान-चरण
चित्तौड़ दुर्ग (प्राचीर-निकट)	1303 ई. (अलाउद्दीन आक्रमण)	गुहिल-द्रम्म + दिल्ली-बलबनी	आपातकालीन निधि	युद्धकालीन-संचयन (जौहर-पूर्व)
कुम्भलगढ़ (अंतर्भूमि)	1535 ई. (बहादुरशाह आक्रमण)	कुम्भा-टंका + महमूदी	आपातकालीन निधि	सैनिक-संकट-संचयन
नागदा (मंदिर-परिसर)	12वीं-13वीं शताब्दी	अल्लट-द्रम्म + सुवर्ण-द्रम्म	संचय/मंदिर निधि	धार्मिक-संचयन
देवली/मानपुर (व्यापारिक-स्थल)	15वीं-16वीं शताब्दी	सांगा-टंका + गुजराती-महमूदी	संचय निधि	व्यापारिक-संचयन/बहु-मौद्रिक

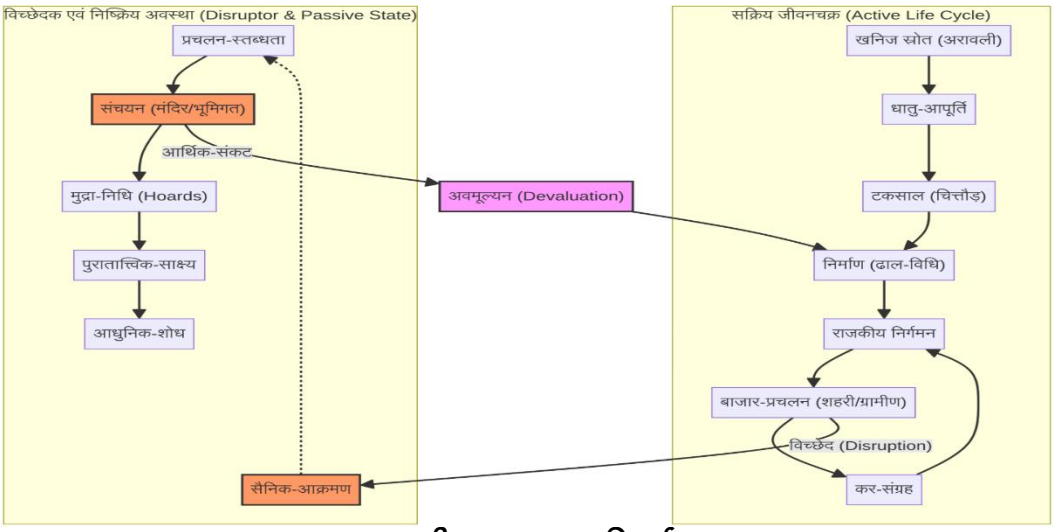

चित्र-1: मुद्रा-जीवनचक्र प्रवाह-निदर्श

चित्र-2: मेवाड़ के व्यापारिक मार्ग एवं मुद्रा-प्रचलन-क्षेत्र

14. संदर्भ सूची

प्राथमिक स्रोत

1. *एपिग्राफिया इंडिका*, खंड 22. नई दिल्ली: एशियाटिक सोसायटी, 1938.
2. *एपिग्राफिया इंडिका*, खंड 30. नई दिल्ली: एशियाटिक सोसायटी, 1953.
3. कनिंघम, अलेक्जेंडर. *ए.एस.आई. रिपोर्ट्स: राजपूताना के पुरातत्व*. खंड 2. कलकत्ता: गवर्नमेंट प्रेस, 1871.
4. कनिंघम, अलेक्जेंडर. *ए.एस.आई. रिपोर्ट्स: मेवाड़ के दुर्ग एवं मंदिर*. खंड 23. कलकत्ता: गवर्नमेंट प्रेस, 1885.
5. *राजपूताना म्यूजियम, अजमेर: मुद्राओं का कैटलॉग*. अजमेर: राजपूताना म्यूजियम प्रकाशन, 1936.
6. *प्रताप म्यूजियम, उदयपुर: मुद्रा-संग्रह का विवरण*. उदयपुर: प्रताप म्यूजियम प्रकाशन, 1941.

द्वितीयक स्रोत

7. अग्रवाल, रामचंद्र. *राजस्थान के मुद्राशास्त्रीय अध्ययन*. जयपुर: राजस्थान प्रकाशन मंडल, 1970.
8. एलन, जॉन. *कैटलॉग ऑफ द कॉइन्स ऑफ अंशिएंट इंडिया इन ब्रिटिश म्यूजियम*. लंदन: ब्रिटिश म्यूजियम प्रेस, 1936.
9. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद. *राजपूताने का इतिहास*. अजमेर: विद्यामंडल प्रकाशन, 1928.
10. कनिंघम, अलेक्जेंडर. *कॉइन्स ऑफ मेडिवल इंडिया*. लंदन: ए.एस. बेग प्रकाशन, 1894.

11. कोड्रिंगटन, ओ.ह. *ए मैनुअल ऑफ मुसलमान न्यूमिस्मैटिक्स.* लंदन: एशियन सोसायटी प्रेस, 1904.

12. गुप्ता, पी.एल. *कॉइन्स: इंडियाज हेरिटेज.* वाराणसी: न्यूमिस्मैटिक सोसायटी ऑफ इंडिया, 1969.

13. द्विवेदी, विद्याधर. *भारतीय मुद्राशास्त्र की रूपरेखा.* वाराणसी: चौखम्बा पब्लिकेशन, 1975.

14. मिश्र, रमेशचंद्र. *मध्यकालीन मेवाड़: राजनीतिक एवं सामाजिक संरचना.* जयपुर: पुस्तक मंडल, 1988.

15. मुखर्जी, बी.एन. *मनी एंड इकोनॉमी इन अर्ली मेडिवल इंडिया.* कलकत्ता: इंडियन कॉइन्स प्रकाशन, 1991.

16. शर्मा, दशरथ. *राजपूत राजनीति: एतिहासिक अध्ययन.* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1969.

17. शर्मा, दशरथ. *अर्ली चौहान डिनास्टीज.* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1975.

18. श्यामलदास, कविराज. *वीर विनोद: मेवाड़ का इतिहास.* खंड 1-2. उदयपुर: राजस्थान शिक्षा मंडल प्रकाशन, 1886 (पुनर्मुद्रण 1986).

19. सरकार, दिनेशचंद्र. *इंडियन एपिग्राफी.* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1965.

20. सिन्हा कपूर, नंदिनी. *स्टेट फॉर्मेशन इन राजपूताना.* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2002.

21. टॉड, जेम्स. *अनल्स एंड एंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान.* खंड 1-2. लंदन: रूपर्ट विलियम-डेस प्रकाशन, 1829-32.

22. *राजस्थान जिला गजेटियर: चित्तौड़गढ़.* जयपुर: राजस्थान गजेटियर विभाग, 1968.

23. *राजस्थान जिला गजेटियर: उदयपुर.* जयपुर: राजस्थान गजेटियर विभाग, 1969.

24. अग्रवाल, रामचंद्र. "मेवाड़ के सिसोदिया शासकों की मुद्राएँ: एक प्रामाणिक विश्लेषण." *जर्नल ऑफ न्यूमिस्मैटिक सोसायटी ऑफ इंडिया,* खंड 25, संख्या 1 (1963): 45-58.

25. अग्रवाल, रामचंद्र. "राजपूताना में मुद्रा-निधियों (Coin Hoards) का ऐतिहासिक महत्व." *न्यूमिस्मैटिक डिजेस्ट,* खंड 12 (1988): 112-125.

26. वर्मा, विश्वेश्वर. "चित्तौड़ की टकसालीय व्यवस्था एवं चित्तौड़ी टंका का स्वरूप." *इंडियन न्यूमिस्मैटिक क्रोनिकल,* खंड 15 (1985): 78-89.

27. शर्मा, दशरथ. "दिल्ली सल्तनत एवं मेवाड़ का आर्थिक विमर्श: मौद्रिक एकाधिकार का संघर्ष." *राजस्थान भारती,* खंड 8, संख्या 2 (1966): 34-48.

28. जैन, कुसुम. "मध्यकालीन मेवाड़ में 'द्रम्म' एवं 'टंका' का प्रचलन: गुहिल से सिसोदिया तक." *प्रोसीडिंग्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री कॉन्ग्रेस,* खंड 42 (1981): 155-162.

29. पाण्डेय, विभास. "मुद्रा-जीवनचक्र: प्राचीन एवं मध्यकालीन आर्थिक विमर्श की एक नवीन विश्लेषणात्मक पद्धति." *हिस्टोरिकल रिसर्च रिव्यू,* खंड 14, संख्या 3 (2019): 220-235.

30. क्रिन्टन, डेविड. "मुद्रा-प्रचलन का तकनीकी-विश्लेषण: ढाल-विधि एवं बिलोन का आर्थिक-परिप्रेक्ष्य." *न्यूमिस्मैटिक डिजेस्ट,* खंड 22 (1998): 55-68.